'कलरव'

आज जिस स्वतंत्र वातावरण में हमारा राष्ट्र फल-फूल रहा है, उसकी पृष्ठभूमि पर हमारे देश के अगणित कुमार कुमारियों और नर नारियों ने अपना जीवन किस प्रकार उत्सर्ग कर दिया था, उसी पृष्ठभूमि पर 'कलरव' का निर्माण किया गया है।

डाक्टर सुशील, रमा, रमेश आदि का प्रभावोत्पादक चरित्र-चित्रण करते हुए उपन्यासकार ने जहां परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति प्रत्येक नागरिक के कर्त्तव्य पालन की एक मनोरम झाँकी प्रस्तुत की है, वहीं लीला और सुशील के पावन प्रणय की आह्लादक तरंगे भी चित्रित करने में अपनी कुशल लेखनी का परिचय दिया है।

देश के लिए परिवार का मोह छोड़कर, यौवन की अनियंत्रित उमङ्गों को दबाकर और अपने प्राणों को हथेली पर रखकर रमा, रमेश आदि का वेश बदलकर जन-जन में जीवनजागृति का मन्त्र फूंकते हुए द्वीपान्तर वास का दण्ड स्वीकार करना किसी भी पाठक को प्रभावित और रोमांचित करने के लिए पर्याप्त है।

कलरव

लेखक
एम० बैनर्जी

प्रकाशक
दी इण्डियन पब्लिकेशन्स,
अम्बाला छावनी।

प्रथमावृत्ति] [मूल्य २॥

प्रकाशक :
ओ० पी० वैद,
मैनेजर, दी इण्डियन पब्लिकेशन्स,
हिल रोड, अम्बाला छावनी।

मुद्रक :
अमर नाथ सिंगल, बी० ए०
प्रो० नैशनल प्रिंटिंग प्रैस,
अम्बाला छावनी।

समर्पण

उन अमर वीर-वीराङ्गनाओं को
सादर समर्पित जिन्होंने
अपना अमूल्य जीवन
देश के लिए
उत्सर्ग कर
दिया।

प्रेरणा

हिन्दी में आज उपन्यासों की कमी नहीं है; परन्तु सोद्देश्य लिखे गए मनोरंजक उपन्यास अब तक उंगलियों पर गिने जाने योग्य हैं। 'कलरव' की रचना सोद्देश्य है और भरसक यह चेष्टा की गई है कि उपन्यास के सबसे प्रमुख तत्त्व मनोरंजन का पुट इसमें सर्वत्र रहे। लेखक अपने इस उद्देश्य में कहाँ तक सफल हुआ है, इसका निर्णय तो प्रबुद्ध पाठक ही करेंगे; किन्तु इतना कह देना मैं आवश्यक समझता हूँ कि आज जिस स्वतन्त्र वातावरण में हमारा राष्ट्र फल-फूल रहा है, उसकी पृष्ठ भूमि पर अगणित कुमार-कुमारियां और नर-नारियों के बलिदान हो चुके हैं, उन्हीं का प्रतिबिम्ब 'कलरव' के पात्रों में मिलता है। इसके अतिरिक्त स्वतन्त्र राष्ट्र को हम किस प्रकार उत्तरोत्तर उन्नत और समुन्नत कर सकते हैं, इसका संकेत भी है।

'कलरव' के सुशील का सार्वजनिक सेवा-क्षेत्र में जीवन उत्सर्ग करना, माता-पिता के प्रति उसकी कर्त्तव्य-शीलता और उसके चरित्र की कठोर पावनता प्रत्येक पाठक को प्रभावित करने की क्षमता रखती है। लीला का अचल प्रेम और रमा, रमेश आदि का राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए जीवन न्योछावर

करना पाठक को रोमांचित करने और अपने कर्त्तव्य की प्रेरणा देने वाला तत्त्व है।

मुझे विश्वास है, 'कलरव' पढ़कर प्रत्येक पाठक का जहाँ मनोरंजन होगा, वहाँ वह अपने परिवार, समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्त्तव्य का समुचित पालन करने की पावन प्रेरणा भी प्राप्त करेगा।

जन्माष्टमी, २०१२
अम्बाला छावनी।

—लेखक

प्रभात बेला की सुनहरी सूर्य-रश्मियों में सारा संसार स्नान कर रहा था और एक पुलक-प्रकम्प का अनुभव हो रहा था। ऊंचे-ऊंचे और सघन वृक्षों पर जहाँ-तहाँ पक्षियों का कलरव एक अपूर्व समाँ बाँध रहा था। प्रकृति के इन सुखद उपादानों के बीच मानव-मात्र एक अव्यक्त प्रसन्नता का अनुभव करता हुआ प्रतीत हो रहा था। परन्तु प्रसन्नता और अप्रसन्नता तो प्रत्येक मानव की आन्तरिक स्थिति और मनोदशा पर ही निर्भर करती है न !

मोहन बाबू आज अपनी बैठक में एक कुर्सी पर बैठे-बैठे दीवार पर टंगे राष्ट्रीय नेताओं के चित्रों को ध्यान-पूर्वक देख रहे थे। इस प्रभात बेला में भी उनकी मुख-मुद्रा पर प्रसन्नता नहीं, एक उद्विग्नता की स्पष्ट छाप दीख रही थी। सहसा उन्हों ने जोर से पुकारा—'रमा !'

'आई, पिता जी !' निकट के दूसरे कमरे से किसी तरुणी का कोकिल का सा स्वर सुनाई पड़ा। दूसरे ही क्षण तरुणी अपने पिताजी के सामने आकर खड़ी हो गई और उनके आदेश की प्रतीक्षा करने लगी।

'बेटी ! अपनी माताजी को तो बुलाओ।'

'बुलाने की आवश्यकता नहीं।' सहसा रमा की माता जी ने भी बैठक में प्रवेश करते हुए कहा—'मैं स्वयं आ पहुँची ! आपने रमा को पुकारा, तो मैं समझी कि मुझे ही बुला रहे हैं।

सचमुच मेरा आशय यही था। मोहन बाबू ने एक मन्द मुस्कान के साथ कहा—तुम अन्तर्यामी से कम नहीं हो।'

'अच्छा यह परिहास छोड़िये। काम की बात कीजिए। किस लिए सवेरे ही मेरी याद की गई।'

'बहुत जरूरी बात है।' मोहन बाबू ने कहा—'यह तो तुम जानती ही हो कि हमारा सुशील प्रथम श्रेणी में बी. एस. सी. की परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हो सका। कलकत्ता मेडिकल कालेज में अब उसका प्रवेश सम्भव नहीं। इस दशा में हमें यह विचार करना है कि सुशील को डाक्टरी पढ़ाने के लिए कहाँ भेजा जाए?'

'यहीं बैठे-बैठे सोच-विचार करने से काम नहीं बनेगा। एक बार कलकत्ते जाकर प्रयत्न तो कीजिए। सम्भव है, एकाध सीट मिल जाए। न मिलने पर कहीं अन्यत्र प्रयत्न करना होगा।

'अच्छा, तो मैं कल दोपहर की गाड़ी से कलकत्ता चला जाऊं और सुशील को वहाँ प्रविष्ट कराने की चेष्टा करूँ।'

'हाँ, यही ठीक होगा।' रमा की मां ने कहा—'लो, सुशील भी यहीं आ रहा है।'

बैठक में सुशील के आते ही मोहन बाबू ने कहा—देखो बेटा। कल मैं कलकत्ते जा रहा हूँ। संभव हुआ, तो मैं वहां के मेडिकल कालेज में तुम्हें प्रविष्ट करा दूँगा।

'मुझे भी आप के साथ ही चलना होगा क्या'? सुशील ने जिज्ञासा पूर्वक अपने पिता की ओर देखते हुए पूछा।

'नहीं, इस समय तुम्हारे चलने की ऐसी आवश्यकता नहीं।'

इसी बीच में नौकर ने बैठक में आकर कहा—'एक सज्जन आप से भेंट करने आए हैं। क्या आज्ञा है?'

'चलो, मैं स्वयं बाहर चलता हूँ।' कह कर मोहन बाबू बाहरी बरामदे की ओर चल पड़े।

'ओ हो! प्रोफेसर दास।' सहसा आगन्तुक को देखते ही मोहन बाबू उछल पड़े और तपाक् से हाथ मिला कर उन्हें बैठक में ले आये।

इस बीच में रमा और सुशील अपनी माता जी के साथ बैठक से भीतर जा चुके थे।

दोनों मित्र इधर उधर की बातें करने लगे। कुछ ही देर में प्रो० दास ने कहा—'मोहन बाबू, आप अपनी पुत्री का विवाह कर चुके या नहीं?'

'नहीं भाई!' मोहन बाबू ने कहा—'वह अपने हठ पर अटल है। बी० ए० हो जाने पर ही वह विवाह करेगी। अभी तो पूरे दो वर्ष का विलम्ब है।'

आज कल की सन्तान हठ करने में बहुत आगे बढ़ चुकी है। अस्तु जैसी उसकी इच्छा!'

'इस समय तो मेरे सामने एक दूसरी ही उलझन है, भाई!'

'वह क्या?'

'हमारा सुशील डाक्टरी पढ़ना चाहता है। परन्तु मेडिकल कालेज, कलकत्ता में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण छात्र ही भरती किए जाते हैं—सो भी बड़ी बड़ी सिफारिशों पर।'

अभी मोहन बाबू सम्भवतः अपनी दुविधा पूरी-पूरी तरह व्यक्त भी नहीं कर पाए थे कि प्रोफेसर दास ने अपनी सहानुभूति दिखलाते हुए कहा—'आप की दुविधा को मैं पूर्ण रूप से समझ रहा हूँ। परन्तु इतनी चिन्ता आप क्यों करते

हैं। आप सुशील को मेरे साथ लाहौर भेज दीजिए। वहाँ मैं मेडिकल कालेज में उसे आसानी से भरती करा दूँगा।'

'वास्तव में यह स्वर्ण-संयोग है कि सुशील आप के पास रह कर डाक्टरी पढ़े।' डाक्टर मोहन ने प्रसन्नता का अनुभव करते हुए कहा—'आप लाहौर में बीस वर्ष से प्रोफेसर हैं, फिर सांसारिक झमेलों से भी आप मुक्त हैं।'

'बस, इस निश्चय पर आप मोहर लगा दीजिए, डाक्टर मोहन !' प्रोफेसर दास ने कहा।

'बल्कि सुशील की माता जी से भी पूछ लूँ।' डाक्टर मोहन ने कहा और जोर से पुकारे—'रमा बेटी ! अपनी माता जी को यहाँ भेज दो !'

एक क्षण के भीतर ही रमा की माता जी ने बैठक में प्रवेश किया और दोनों हाथ जोड़ते हुए कहा—'नमस्ते प्रोफेसर साहब। कब आये आप !

प्रोफेसर दास ने भी दोनों हाथ जोड़ते हुए नमस्कार किया और कहा—'लगभग एक महीना हो गया इस ओर आये। चार अक्टूबर को कालेज खुल रहा है। उस के कुछ समय-पहले ही लाहौर पहुँचना होगा। आप का स्वास्थ्य कैसा रहता है।'

'पंजाब में जाकर आप तो यहाँ का मलेरिया एक दम भूल चुके होंगे। पर हम लोग प्रायः उसके शिकार होते रहते हैं।'

डाक्टर मोहन को इस औपचारिक वार्त्ता में कोई रस नहीं आ रहा था। उन्हें तो प्रोफेसर दास के सुशील सम्बंधी प्रस्ताव पर अपनी पत्नी से परामर्श करने की उत्सुकता थी, अतः बीच में ही वह बोल उठे—'देखो, रमा की मां ; यह प्रोफेसर साहब

सुशील को अपने साथ लाहौर ले जाने और वहाँ के मेडिकल कालेज में भरती कराने की बात कह रहे हैं। तुम्हारा क्या विचार है, इस विषय में ?'

रमा की माँ कुछ कहें कि इसके पहले ही प्रोफेसर दास ने कहा—'सुशील को डाक्टरी पढ़ाने का आप लोगों का निश्चय बहुत ही अच्छा है। पर कलकत्ता मेडिकल कालेज में जब प्रविष्ट कराने में अनेक बाधाएँ हैं, तब मेरा प्रस्ताव है कि सुशील को आप लोग मेरे साथ लाहौर भेज दें। सुशील चाहे तो मेरे ही साथ रह सकता है अथवा छात्रावास में भी उसके रहने की व्यवस्था हो सकती है। लाहौर के मेडिकल कालेज में उसे मैं सहज ही भरती करा दूँगा और बात की बात में पांच वर्ष के भीतर सुशील एक बड़ा डाक्टर बन जायगा।'

मां की ममता विद्रोही बनी। हृदय में हिलोरें लेने लगी। वह कुछ कहना चाहती है पर कह नहीं सकती। बिन कहे रह भी नहीं सकती। बेटे का भविष्य और स्नेह दोनों के संघर्ष में उसकी स्थिति सांप और छछूंदर की सी हो गई। सुशील भी बैठक में आकर यह वार्तालाप सुनने लगा। माँ ने एक बार अपने पुत्र की ओर ममता के साथ देख कर कहा—'लाहौर बहुत दूर है। इकलौते बेटे को इतनी दूर भेजने में न जाने क्यों मेरा दिल कांप उठता है।'

मोहन बाबू माँ की इस ममता पर खीझ उठे। वे सहसा बोले—'इकलौता बेटा कह-कह कर तुमने इस लड़के का दिमाग पलट दिया है। सुशील से ही क्यों नहीं पूछ लेतीं ? फिर पुत्र के भविष्य का विचार भी तो हमें ही रखना है।'

'पिताजी ठीक कहते हैं, माताजी !' यह रमा का स्वर था—'बात की बात में पाँच वर्ष बीत जायेंगे।' भैय्या, इतनी दूर

जाने से डरते हो क्या ?'

'डर किस बात का रमा !' सुशील ने कहा—'युद्धक्षेत्र पर तो जा नहीं रहा हूँ। और देश के लिए यदि किसी युद्धक्षेत्र पर भी जाना पड़े, तो मैं मुस्कराते हुए सहर्ष चला जाऊंगा।'

मोहन बाबू ने यह सुनकर प्रसन्नता से भरकर कहा—'बस, निर्णय हो गया ! प्रोफेसर दास, आप सहर्ष सुशील को अपने साथ लाहौर ले जाइए। सारा दायित्त्व आप पर ही रहेगा, मैं तो केवल खर्च भेजने का उत्तरदायी रहूँगा।'

इस बीच में नौकर एक छोटी मेज पर चाय की ट्रे रख गया था और सुशील की माता जी प्यालों में चाय भी तैयार कर चुकी थीं जो प्रातःकालीन शीतल वायु से सम्भवतः ठण्डी भी होने लगी थी। डाक्टर मोहन ने प्रोफेसर दास से कहा—'अरे, यह चाय तो ठण्डी हो रही है, पीजिए मि० दास !'

दोनों मित्र चाय की चुस्कियाँ लेने लगे।

२

रमा और सुशील दोनों अपने कमरे में बैठे अध्ययन कर रहे थे। सहसा रमा ने अपनी पुस्तक मेज पर रख दी और सुशील की ओर देख कर बोली—'भैय्या, अब तो तुम लाहौर जा रहे हो—हम लोगों से बहुत दूर, परन्तु .....'

'परन्तु क्या ?' सुशील ने बीच में ही टोकते हुए पूछा।

'यही कि वहाँ जाकर किसी के माया जाल में फँसकर कहीं हमें भूल न जाना !' रमा ने कुछ गंभीर होते हुए कहा।

'पगली कहीं की !' सुशील ने रमा को ध्यान पूर्वक देखते हुए कहा—'इधर कालेज जाने का समय हो गया है, और तुझे यह सब सूझ रहा है ! जा, भाग यहाँ से।'

'अच्छी बात है।' रमा ने खड़े होते हुए कहा—'अभी तो मैं चली; पर कालेज से लौट कर मैं इस सम्बंध में तुमसे अवश्य बात करूँगी।'

हां, हां देखा जायगा।'

इसी बीच में नौकर ने आकर सुशील से कहा—आपको डाक्टर साहब बुला रहे हैं।'

सुशील तत्काल अपने पिताजी के कमरे में जा पहुँचा। उसे देखते ही डाक्टर मोहन ने कहा—'यह दर्जी बड़ी देर से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा है, बेटा ! इसे अपने कपड़ों का माप दे दो।'

जब दर्जी माप ले चुका, तो सुशील ने अपने पिताजी से कहा—'पिताजी, लाहौर में क्या अँगरेजी वेषभूषा में ही रहना होगा ?

'हाँ, बेटा !' डाक्टर मोहन ने कहा—'लाहौर तो भारतवर्ष का पैरिस कहलाता है न ! फिर कहावत भी है कि खाओ अपने मन का, पहनो जग के मन का।'

'ठीक है, पिताजी, !' सुशील ने कहा—'पर एक अनुरोध आप से करना है।'

'वह क्या ?'

'यही कि जहाँ तक सम्भव हो, विशुद्ध खादी के ही कपड़े बनायें जायें। खादी उपलब्ध न हो, तो स्वदेशी वस्त्र बेशक रहें।'

'ऐसा ही होगा, बेटा !' डाक्टर मोहन ने कहा—'तुम्हारी इच्छा का पूरा पूरा ध्यान रक्खा जाएगा' फिर दर्जी को लक्ष्य करके उन्होंने कहा—'देखो मास्टर, ये कपड़े एक सप्ताह के भीतर ही तैयार हो जायँ।'

'बहुत अच्छा, साहब !' कह कर दर्जी चला गया।

तीसरे पहर जब रमा कालेज से लौटी तो एकान्त पाकर उसने भाई से कहा—'सवेरे की बात याद है, भैय्या ?'

'नहीं तो !' सुशील ने अन्यमनस्कता से कहा—'तुम्हीं बतलाओ न, कौन सी बात है ? पहेलियां क्यों बुझाती हो ?'

'वही माया जाल में फँसकर हम लोगों को भूल जाने की बात !' रमा ने मुसकराते हुए कहा।

'मैं किसी माया जाल में कहीं नहीं फँस सकता, रमा !' सुशील ने तनकर कहा।

'यह तो बहुत सन्तोपजनक उत्तर है।' रमा ने कहा—पर इसकी परख समय आने पर ही की जायगी !'

'जब जी चाहे परख लेना। मैं कोई डरने वाला आसामी

नहीं हूँ, रमा ! 'सुशील ने तरुणोचित ठसक के साथ उत्तर दिया ।
'अच्छा भैय्या ! इस वार्त्ता को हम यहीं समाप्त कर दें; पर एक बात तुम्हें माननी ही पड़ेगी ।'

'वह क्या ?' सुशील ने उत्सुकता के साथ पूछा ।

'यही कि अब तुम लाहौर चले जाओगे—हम लोगों से बहुत दूर । इसलिए आज संध्या समय सैर करने मेरे साथ चलो । घर में बैठे-बैठे अच्छा नहीं लगता ।'

सुशील एक क्षण के लिए असमंजस में पड़ गया । उसका मन जाने क्यों आज कहीं सैर-सपाटा करने के लिए तैयार नहीं था । पर स्नेहशीला बहिन का यह गहरा अनुरोध भी वह टालना नहीं चाहता था । वह तैयार हो गया और बहिन के साथ चल पड़ा ।

इधर-उधर की बातें करते हुए दोनों भाई-बहिन काफी दूर निकल गए । मार्ग में ब्रह्म समाज का मन्दिर था । दोनों उसके भीतर चले गये और थोड़ी ही देर में फिर बाहर आकर घूमते हुए आगे चले गये ।

अब तक दिन भर का थका-माँदा सूर्य भी क्षितिज के पार जा कर विश्राम करने लगा था । नीलाकाश में इधर-उधर कुछ तारे झिलमिलाने लगे थे । सड़क पर बिजली के लट्टू जगमगा उठे थे । चलते-चलते एक मोड़ पर पहुँचकर सहसा सुशील ने कहा—'रमा, हम इतनी दूर तो आ ही गए हैं । क्यों न रमेश से भी भेंट करता चलूँ । वह मेरा पुराना सहपाठी है । जाने फिर कितने दिनों बाद भेंट हो ।'

'हाँ-हाँ, अवश्य चलो ।' रमा ने प्रसन्नता से कहा ।

कुछ ही कदम आगे रमेश का घर था । फाटक

पर जाकर सुशील ने आवाज़ दी—'रमेश !'

आवाज़ सुनते ही एक नौकर नीचे दौड़ा आया और बोला —'रमेश बाबू तो बाज़ार गए हैं, साहब ! परन्तु अब लौटने वाले ही हैं। चलिए, आप तब तक बैठिये।'

'फिर कभी आ जायँगे हम लोग।' कहकर सुशील रमा के साथ लौटने ही वाला था कि रमेश की बहिन लज्जा नीचे उतर आई।

लज्जा ने रमा का हाथ पकड़ कर कहा—'ऐसी जल्दी क्या है, बहिन ? तनिक तो बैठ जाओ।'

लज्जा के इस स्नेह-सने अनुरोध को ठुकराने की क्षमता रमा और सुशील में नहीं थी। दोनों ने एक-दूसरे की ओर देखा और चुपचाप लज्जा के साथ ऊपर चले गए। लज्जा ने उन को रमेश के कमरे में ले जाकर बैठाया और इधर-उधर की बातों में रमेश की अनुपस्थिति का उन्हें कोई आभास न होने दिया।

कुछ ही देर में रमेश भी आ पहुँचा। रमेश को देखते ही सुशील उछल पड़ा और दोनों एक दूसरे से लिपट गए।

'रमेश भैय्या !' सुशील ने कहा—'मैं लाहौर जा रहा हूँ, इसलिए आज तुमसे मिलने चला आया। चाहता हूँ, माताजी और पिता जी के भी दर्शन कर लूँ।'

'सामने देखो, वे दोनों तुम्हारे आने का समाचार पाकर यहीं आ रहे हैं।' रमेश ने कहा।

रमेश के माता-पिता को प्रणाम करके सुशील ने उन्हें भी अपने लाहौर जाने का निश्चय सुना दिया। उन्हों ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट की और सब बैठे कुछ देर बातें करते रहे।

लज्जा उनके लिये कुछ नाश्ता तैयार कर लाई थी।

न न करते हुए भी उन्हें वह लेना पड़ा। उसके उपरान्त रमा ने सुशील को लक्ष्य करके कहा—चलो भैय्या बड़ी देर हो गई है।'

'हाँ, रमा! अब चलना ही चाहिए।' और वह तत्काल उठकर खड़ा हो गया।

पारस्परिक अभिवादन के पश्चात् सुशील और रमा को नीचे तक पहुँचाने रमेश और लज्जा भी आए।

कुछ दूर चुपचाप चलने के बाद रमा ने कहा—'भैय्या! बुरा न मानो तो एक बात कहूँ ?

'नहीं मानूँगा! कह, क्या बात है ?

'कुछ दिन हुए, रमेश के पिताजी हमारे पिताजी से लज्जा के साथ तुम्हारे विवाह की बात कर रहे थे। पर क्या निश्चय हुआ, यह मुझे अभी तक पता नहीं चला। जो भी हो, लड़की है बहुत अच्छी। यदि यह विवाह हो जाय, तो जोड़ी अनुपम रहेगी। भैय्या सुशील और भाभी लज्जावती! अच्छा, तुम जानते हो कुछ इस सम्बंध में भैय्या, कि यह विवाह कब तक होगा ?'

'मैं तो आज पहली बार ही तेरे मुँह से यह सब सुन रहा हूँ।' सुशील ने चलते-चलते कहा—'अच्छी वस्तु को सभी अच्छा कहेंगे। फिर एक क्षण रुक कर सुशील बोला—'लज्जा में एक विशेषता और भी है, रमा!'

'वह क्या ?' रमा ने उत्सुकता से भरकर पूछा।

'लज्जा गाती बहुत अच्छा है। एक दिन मैं रमेश के साथ सहसा उसके कमरे में जा पहुँचा, तो उसके कण्ठ से निकली यह [illegible] था।

सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम् ।
शस्य श्यामलाम् मातरम् वन्दे-मातरम् ॥'

इसी तरह बातचीत करते हुए दोनों भाई-बहिन काफी रात-बीते घर पहुँचे। माता-पिता इन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे। इन्हें देखते ही डाक्टर मोहन ने कहा—'बड़ी देर कर दी, भई! कहाँ रहे दोनों ?'

'रमेश के घर चले गए थे, पिताजी !' रमा ने कहा—'रमेश की बहिन लज्जा ने बड़ा स्वागत-सत्कार किया। बड़ी सुशील है वह।'

'सम्भवतः इसीलिए उसके पिता हमारे सुशील पर दृष्टि जमाए बैठे हैं।'

सुशील की माताजी यह सुनते ही बोलीं अभी यह चर्चा अपेक्षित नहीं। समय पर सब ठीक हो जायेगा चलिए भोजन ठण्डा हो रहा है।

३

आखिर लाहौर जाने का दिन आ पहुँचा। यों तो पिछले एक सप्ताह से ही सुशील की माता जी उसके भेजने के प्रबन्ध में यथेष्ट व्यस्त रहीं; किन्तु आज तो उनका सारा दिन सुशील की तैयारी में ही बीत गया। रमा भी अपनी माता जी के साथ बराबर व्यस्त रही।

सन्ध्या समय लगभग छः बजे प्रोफेसर दास अपने सामान के साथ सुशील को अपने साथ ले चलने के लिए उसके घर आ पहुँचे। साढ़े सात बजे की गाड़ी से उन्हें जाना था, अतः इतने पहले ही उन्होंने सुशील के घर आ जाना ठीक समझा।

प्रोफेसर दास के आ जाने पर सब ने एक साथ बैठ कर चाय पी और फिर स्टेशन की ओर चल पड़े।

स्टेशन पर जा कर पता चला कि जिस गाड़ी से प्रो० दास और सुशील को लाहौर जाना है, वह पन्द्रह-बीस मिनट लेट है। एक हलकी-सी उदासीनता सभी के मुख-मण्डल पर छा गई। प्रतीक्षालय में जाकर सब लोग बैठ गए और इधर-उधर की बात-चीत करने लगे। इसी बीच में रमा को साथ लेकर सुशील प्लेटफार्म पर जा पहुँचा और दीवार पर लगे विज्ञापन आदि देखते हुए दोनों 'बुकस्टाल' पर जाकर नई-नई पत्रिकाओं को उलट-पुलट कर देखने लगे।

सहसा किसी ने पीछे से आकर सुशील के कन्धे पर धीमे से एक धप जमाते हुए कहा—'अरे! चुपचाप ही जा

रहे थे, सुशील ! लो हम लोग भी चलते समय तुम से भेंट करने आ पहुँचे।'

घूम कर सुशील ने प्रसन्नता व्यक्त करते हुए कहा 'तुम बहुत अच्छे हो, रमेश !

रमेश के साथ उसकी बहिन लज्जा भी थी। रमा ने मुसकराते हुए उस को अभिवादन किया। दोनों धीमे-धीमे स्वरों में कुछ बात चीत करने लगीं।

तभी कुली ने आकर सुशील से कहा—'गाड़ी आ रही है, सरकार !' और वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही प्रतीक्षालय की ओर बढ़ गया।

सुशील, रमेश, रमा और लज्जा—चारों कुली के पीछे-पीछे चल पड़े। प्रतीक्षालय से सभी लोग बाहर प्लेटफार्म पर आ गए। कुलियों ने सिरों पर और बाहों में सामान सहेज कर रक्खा और गाड़ी के आने की बाट जोहने लगे।

कुछ ही क्षणों में गाड़ी प्लेटफार्म पर आ पहुँची। सुशील की आँखें अपने रिजर्व किए हुए द्वितीय श्रेणी के डिब्बे को खोज ही रही थीं कि लज्जा बोल उठी—'यह रहा आप का डिब्बा और आप दोनों के नाम।'

लज्जा की तत्परता देख सभी लोग मुग्ध हो गए। सचमुच निकट ही द्वितीय श्रेणी के एक डिब्बे पर 'प्रो० दास और सुशील कुमार के नाम भी अंकित थे।'

कुलियों ने निश्चिन्त होकर सारा सामान डिब्बे में यथा-स्थान पर रख दिया और दोनों यात्रियों के लिए दो बिस्तर भी बिछा दिए।

सहसा गार्ड की सीटी सुनाई पड़ी, तो सुशील ने माता-पिता के चरणों का स्पर्श किया। दोनों ने पुत्र को अपने वक्ष से

लगा कर आशीर्वाद दिया। फिर रमा का एक हाथ अपने दोनों हाथों से दबाते हुए सुशील ने कहा—'रमा, तुम अपनी पढ़ाई का बराबर ध्यान रखना और माताजी तथा पिताजी का भी विशेष ध्यान रखना बहिन।

'तुम चिन्ता न करो, भैय्या!' रमा ने रूंधे हुए कण्ठ से कहा—'मैं सब ध्यान रखूँगी। तुम पत्र बराबर लिखते रहना, जिस से हम लोगों की चिन्ता बढ़ने न पाये।'

गाड़ी धीरे-धीरे सरकने लगी, तो रमेश ने कहा—'पत्र भेजने में कभी आलस न करना सुशील!'

लज्जा बेचारी इस विदा-बेला में कुछ न कह सकी। वह कहती ही क्या? जो कहीं उसका जीवन-सूत्र सुशील से ही संबद्ध हो गया, तो······? तब क्या भावी सास-ससुर और ननंद की उपस्थिति में उसका कुछ भी कहना इस समय ठीक समझा जा सकता है? यही सब विचार-धाराएँ उसे अभिभूत कर बैठीं। इतना अवश्य सुशील ने चलते-चलते देखा कि सब के समान लज्जा की आंखें भी गीली थीं, बल्कि उसकी आँखों में एक गहरी विवशता का आकर्षक प्रतिबिम्ब भी दीख रहा था। गाड़ी जब चल पड़ी, तो चुप चाप लज्जा के दोनों हाथ सहसा उठ गए और धीमी सी वाणी में उसने केवल एक शब्द कहा—'वन्दे मातरम!'

जब तक गाड़ी आँखों से ओझल न हो गई, सभी लोग प्लेटफार्म पर खड़े रहे और अभिवादन के रूप में अपना अपना रुमाल हिलाते रहे।

उधर रेल गाड़ी गति के साथ बढ़ गई। सुशील अपनी सीट पर बैठा लज्जा के विचारों में उलझ गया। चलते समय उसने जो 'वन्दे मातरम्' कहा था, इसे सुनते ही

सुशील के मन-प्राणों में लज्जा के इसी 'वन्दे मातरम्' गीत का एक-एक स्वर गूंजने लगा। कितना मीठा गाती है यह लज्जा! कैसा सुरीला कण्ठ है इसका। उस दिन जब अचानक ही सुशील अपने मित्र रमेश के साथ लज्जा के कमरे में जा पहुँचा था, तब उसका 'वन्दे मातरम्' 'गीत सुन कर वह आत्म-विभोर हो गया था। लगता था, मानो देवलोक से किसी अप्सरा के कल-कण्ठ की स्वर लहरी आ रही हो।

गाड़ी वायुवेग से भागी जा रही थी। किसी की कुछ सुनती ही न थी। धूमिल आकाश में आग उगलती मार्ग को काटती जा रही थी। सारा वातावरण उसी के पीछे भागा जा रहा प्रतीत हो रहा था। राका रजनी ने चतुर्दिक् चाँदी का चूरा बिखेर रक्खा था। रह रह कर समीर हिलोरें दे रहा था। स्टेशन पर स्टेशन आते और देखते ही रह जाते गाड़ी रुकने का नाम भी न लेती, मानों निरन्तर गति का निर्वाण पाये बैठी हो। क्या आया क्या गया कौन जाने? सुशील के कानों में वही 'वन्दे मातरम्' का अमर स्वर गूंज रहा था। उसके मानस पर वही लज्जा की सजल एवं विवश आँखें अंकित थीं वह अब भी इस मधुर निद्रा से न जागता यदि प्रो० दास के ये शब्द उसे सहसा चौंका न देते—'सुशील बेटा! तुम क्या सोच रहे हो आखिर?'

सुशील ने तत्काल प्रकृतिस्थ होने की चेष्टा की और अपनी मनोदशा को छिपाते हुए कहा—'कोई विशेष बात नहीं सोच रहा हूँ, चाचा जी!' फिर एक क्षण रुक कर उसने कहा—'नौ बज रहे हैं, चाचा जी! हम लोग भोजन क्यों न कर लें? सभी वस्तुएं साथ हैं।'

'तुम्हारे साथ थोड़ी ही देर पहले जो चाय पी थी, उसे तो

पच जाने दो भाई !' प्रोफेसर दास ने कहा—'यदि तुम्हें ज़ोरों की भूख न हो, तो थोड़ी देर और ठहर जाओ।'

मैंने तो समय काटने का सदुपाय समझ कर खाने का प्रस्ताव रख दिया था, चाचा जी !' सुशील ने कहा—'कोई विशेष भूख मुझे भी नहीं है। थोड़ी देर में संभव है, खुल कर भूख लग आवे।

प्रोफेसर दास मुस्करा दिये। उन्हें यह समझते देर न लगी कि लड़का अपने परिवार से बिछुड़ रहा है, अतः स्वभावतः उसकी मनोदशा इस समय डावाँडोल है परन्तु उसे छिपाने की चेष्टा कर रहा है।

नीचे की आमने-सामने की दोनों सीटें सुशील और प्रो० दास के लिए सुरक्षित थीं। दूसरी ओर ऊपर-नीचे की दोनों सीटों पर एक दम्पति का अधिकार था, जिनके साथ एक नन्हा-सा बच्चा भी था। वेश-भूषा से यह दम्पति मारवाड़ी प्रतीत होते थे। पाँचवीं ऊपरी सीट पर एक पंजाबी सज्जन ने अपने सोने की तैयारी कर रखी थी।

डिब्बे की खिड़कियों में से सितम्बर की धीमी-धीमी शीतल बयार के मदिर झोंके आकर डिब्बे के यात्रियों को पुलक-प्रकम्प से भर-भर देते थे। रात्रि के प्रथम प्रहर की घड़ियाँ भी बड़ी सुहावनी प्रतीत हो रही थीं। खिड़कियों में से दूर नीले आकाश में चमकते तारे बड़े मोहक लग रहे थे।

सहसा एक हलके-से झटके के साथ गाड़ी स्टेशन पर जाकर खड़ी हो गई। प्रो० दास ने उन्मुक्त आकाश की झाँकी की ओर से अपनी दृष्टि हटाकर प्लेटफार्म की जगमगाती बिजलियों की ओर ज्योंही दृष्टि डाली, तो देखा कि आसनसोल जंकशन है। साथ के नौकरों के डिब्बे से प्रोफेसर दास के नौकर मुरली ने आकर कहा—'भोजन करेंगे, हजूर ?'

'हाँ, भोजन तो करना ही है। पानी लेकर तुम भी आ जाओ' फिर सुशील की ओर देखकर कहा—'आओ बेटा ! अब हम लोग भोजन कर लें।'

'अच्छा, चाचा जी !' कहकर सुशील ने अपना भोजन-भाजन निकाला और पानी लेकर जब मुरली आ गया, तो उसके सामने उसे रख दिया।

मुरली ने सुशील और प्रोफेसर दास दोनों के लिए खाना परोस दिया और फल भी रख दिए। अपने लिए भी उसने भोजन ले लिया और तीनों भोजन करने लगे।

भोजन समाप्त हो जाने पर सुशील और प्रो० दास अपनी अपनी सीट पर लेट गए और मुरली अपने डिब्बे में जाकर सो गया।

दिन की सारी बातें चित्र-पट सी मस्तिष्क में घूम रही थीं। सब की मधुर स्मृति बिजली की तरह रह रह कर उसके हृदय में चमक पड़ती और मीठी सी जलन और कसक छोड़ जाती। स्मृतियों के इस ताने बाने में सुशील की आँख कब लगी वह न जान सका।

प्रातः जब आँख खुली, तो गाड़ी बक्सर स्टेशन पर रुकी थी। प्रो० दास की ओर सुशील ने देखा, तो वह बोले—'चाय पी लो, सुशील !'

'अच्छा, चाचा जी !' कहकर सुशील ने हाथ-मुँह धोकर और प्रो० दास के साथ चाय पीने बैठ गया।

गाड़ी फिर आगे चल पड़ी। सूर्य की सुनहरी किरणें समस्त भूमण्डल पर सोना बिखेर रही थीं। रेल मार्ग के निकट जो ऊँचे-ऊँचे वृक्ष दीख पड़ते थे, उन पर पक्षियों का कलरव बड़ा ही आह्लादक प्रतीत हो रहा था।

दूसरे दिन प्रातःकाल यह लोग अपने गन्तव्य स्थान लाहौर पहुँच गए। प्रो० दास सुशील को अपने निवास स्थान कपूरथला-हाऊस ले गए।

घर में पहुँचकर प्रो० दास सुशील को एक कमरे में ले गए और बोले—'यह रहा तुम्हारा कमरा। अब तुम आराम करो। थोड़ी देर में नहा-धोकर खाना खा लेना और सो जाना। यात्रा की थकावट दूर करना पहली आवश्यकता है। फिर सन्ध्या समय हम लोग कहीं घूमने चलेंगे।

'अच्छा, चाचा जी!' कह कर सुशील ने अपने कमरे में जाकर एक अपूर्व सन्तोप की साँस ली। किसी श्रान्त-क्लान्त बटोही को अपनी मंजिल पूरी कर लेने पर जिस आत्म-सन्तोष अव्यक्त-सा आनन्दानुभव होता है, लगभग वैसा ही आनन्दानुभव सुशील ने इस कमरे में जाकर किया।

इसके बाद सुशील ने अपना सूटकेस खोला, दो-तीन लिफाफे और पत्र लिखने का 'पैड' निकाल कर मेज पर जा बैठा। दो पत्र उसने पिता जी और रमेश के नाम लिखे और एक पत्र रमा के नाम लिखा। कमरे से बाहर आकर उसने नौकर को तीनों लिफाफे डाक में छोड़ आने का आदेश दे दिया।

४

सुशील के लाहौर चले जाने पर तीन-चार दिन बीतते ही डा० मोहन उसके कुशल पूर्वक पहुँच जाने के पत्र की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे कि एक सप्ताह बीतते-न बीतते उन्हें प्रो० दास का पत्र मिला। एक हाथ में उनका लिफाफा लिये डा० मोहन प्रसन्नता-पूर्वक घर में आये और सीधे सुशील की माता जी के पास जाकर बोले—'लो, लाहौर से प्रोफेसर दास का पत्र आया है। लिखा है कि उन्होंने सुशील को वहाँ के मेडिकल कालेज में प्रविष्ट करा दिया है। अभी हाल सुशील उन्हीं के पास रहेगा। प्रोफेसर सूरी के आ जाने पर, जो उनके ही निकट वाली कोठी में रहते हैं, वह किसी अच्छे छात्रावास या मेस में उसके रहने की व्यवस्था कर देंगे।'

रमा भी अपने सुशील भैय्या के सम्बंध में ये बातें चुपचाप खड़ी सुन रही थी। पिता जी जब अपनी बात पूरी कर चुके, तो रमा ने कहा—'भैय्या ने भी यही सब लिखा है, पिता जी! प्रोफेसर दास की प्रशंसा के गीत गाए हैं। लाहौर बहुत अच्छा लगा भैय्या को; परन्तु वहाँ की भाषा उनके लिए एक समस्या है अभी हाल। परन्तु यह समस्या शीघ्र हल हो जायगी। किसी भी नए स्थान की बोली प्रारंभ में अटपटी-सी प्रतीत होती है। धीरे-धीरे वह समझ में आने लगती है।'

सुशील के सम्बंध में यह बातचीत चल ही रही थी कि रमेश और लज्जा भी आ पहुँचे। आजकल इन तीनों में यथेष्ठ

घनिष्ठता बढ़ गई थी। दैनिक कार्यक्रम भी प्रायः ये तीनों एक साथ ही निर्धारित करते और साथ-साथ ही इधर-उधर घूमते-फिरते। पढ़ते भी थे तीनों एक ही कालेज में, भले ही कक्षाएँ तीनों की अलग-अलग थीं। रमेश एम० एस-सी० में था, रमा बी० ए० की छात्रा थी और लज्जा बी० एस-सी० में पढ़ रही थी। तीनों की कक्षाओं का प्रथम वर्ष था, अतः अवकाश की कमी नहीं थी। कदाचित् यही कारण था कि ये तीनों ही आजकल अपनी तरुण उमंगों के साथ राजनीतिक आन्दोलनों में सोत्साह भाग लेने लगे थे।

लज्जा और रमेश के अतिरिक्त और भी नए-नए व्यक्ति आजकल रमा के घर आने लगे थे, जिनमें पुरुष और स्त्रियाँ, तरुण और तरुणियाँ, अधेड़ और वृद्ध—सभी आयु के लोग थे। इन लोगों के आने का क्या कारण था और रमा से इनकी क्या बातचीत होती थी, यह अब तक किसी को ज्ञात नहीं था। रमा के माता-पिता भी इस तथ्य से अनभिज्ञ प्रतीत होते थे। रमा की माँ ने दो-एक बार जिज्ञासा प्रकट भी की परन्तु इन लोगों ने चतुराई से मूल प्रश्न को टालते हुए केवल यही आकांक्षा प्रकट की कि वे लोग रमा के माता पिता का आशीर्वाद चाहते हैं और देश तथा समाज को उन्नत करने की एकमात्र साध पूरी करना चाहते हैं।

देश और समाज को उन्नति के अनुष्ठान में भाग लेने से भला कौन देशभक्त अपनी सन्तान को रोकने की चेष्टा करेगा? और अगर कोई करे भी, तो क्या यह तरुणाई का ज्वार, यह आकांक्षाओं का विस्फोट कभी दब सकता है? रमा के माता पिता ने भी इस ओर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया; इन सब की कोई चिन्ता नहीं की।

धीरे-धीरे ऐसा प्रतीत होने लगा कि कोई षड्यंत्र रचा जा रहा है, जिसके नेता रमा और रमेश हैं तथा लज्जावती उनका दाहिना हाथ है। इनके दल में नित्य नवीन मूर्त्तियाँ दिखलाई पड़तीं। लगभग छः महीने में ही इन की संख्या सम्भवतः कई हजार तक पहुँच गई होगी। किन्तु ये लोग कौन थे और क्या करते थे, यह उनके नेताओं के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता था। स्वयं ये लोग भी आपस में एक-दूसरे को भली भाँति जानते-पहचानते नहीं थे।

दिन पर दिन यह दल प्रगति की ओर अग्रसर हो रहा था किन्तु ऐसी बातें अधिक समय तक परदे में नहीं रह सकतीं— सो भी विदेशी सरकार की पैनी दृष्टि से !

एक दिन सहसा रमेश के पिता को एक उच्च पदस्थ सरकारी अधिकारी का पत्र मिला, जिसमें उन्हें चेतावनी देते हुए साफ साफ लिखा था कि भले ही आप एक सच्चरित्र और माननीय सरकारी पदाधिकारी हों; परन्तु आप के पुत्र रमेश और पुत्री लज्जा की वर्तमान गतिविधि सरकार की दृष्टि में सर्वथा अनुचित है—सरकार विरोधी अन्दोलन में ये दोनों आजकल सक्रिय सहयोग दे रहे हैं। इस भयानक मार्ग पर चलने से आप इन दोनों को इसी समय रोकने की चेष्टा कीजिए।

रमेश के पिता श्री सुरेन्द्र मोहन, बर्दवान शहर में सी० आई० डी० पोलिस के एक उच्च पदाधिकारी थे। वह बहुत ही भले मानुस थे, किन्तु अपने कर्तव्य का पालन करने में वह कभी नहीं चूकते थे। कोई लालच अथवा प्रलोभन उन्हें अपने कर्त्तव्य मार्ग से विचलित नहीं कर सकता था। वह सदा कठोरता के साथ अपने कर्त्तव्य का पालन किया करते थे। उनके इस कर्त्तव्य

की वेदी पर अब तक अगणित नर-नारी बलि चढ़ चुके थे।

उनके कर्त्तव्य की यह दृढ़ता कितने ही लोगों को फूटी आँखों नहीं सुहाती थी। एक दिन सहसा रमेश की माँ के नाम डाक द्वारा एक लिफाफा आया। उस में एक पत्र के साथ काँच की एक टूटी हुई चूड़ी भी निकली। पत्र में लिखा था कि एक अभागिन माँ का पुत्र उनके पति के कारण फांसी के फन्दे पर लटका दिया गया है, इस लिए उनके सौभाग्य पर अभिशाप की सूचना काँच के इन टुकड़ों द्वारा उनको भेंट की जा रही है।

इसी प्रकार एक दिन डाक-पार्सल द्वारा, एक बेकिनारी की सफेद साड़ी भी, रमेश की माताजी के नाम आई थी, जो वैधव्य सूचक थी।

रमेश और लज्जा भी कितनी ही बार अपनी माताजी से यह कह चुके हैं कि आजकल बाज़ार अथवा राजमार्ग पर कहीं भी उनका निकलना अपमान और तिरस्कार के तीखे घूँट पीना है। जहाँ भी ये भाई-बहिन जाते हैं, लोग इनकी ओर देखकर थूकने लगते हैं और तरह तरह के ताने देते हैं। कोई कहता है, यही हैं उन कठोर नराधम की सन्तान, जिन्हों ने मेरे भाई को जेल में बन्द करा दिया है। कोई कहता है, इन्हीं के पिता ने मेरे पुत्र को फाँसी के फन्दे पर लटकवा दिया है। कोई नारी ठण्डी साँसें भरकर कहती है, इन्हीं के पिता ने मेरे पति को परलोक पथिक बनाया।

एक दिन लज्जा ने ये सारी बातें अपनी माता जी से कह दीं और गीली आँखों को पोंछते हुए कहा—'पता नहीं, पिताजी को आजकल क्या हो गया है, माताजी! तुम्हीं बतलाओ, ऐसी दशा में हम लोग आखिर क्या करें, कैसे रहें? लगता है, इन सब अन्यायों और अत्याचारों के अभिशाप की काली छाया

किसी दिन हम सबको भी नष्ट न कर दे।'

लज्जा की माँ तो पहले से ही यह सब देख-सुनकर अभिभूत हो चुकी थीं। लज्जा की बात सुनकर उन्होंने भी एक ठण्डी सांस छोड़ते हुए कहा—'पता नहीं ईश्वर की क्या इच्छा है, बेटी! हमारे भाग्य में जो कुछ लिखा होगा, उसे कौन मिटा सकता है?' और उनका हृदय इतना उमड़ आया कि लज्जा के सामने वह खड़ी न रह सकीं—अपने कमरे में चली गईं।

५

लाहौर के मेडिकल कालेज में पढ़ते हुए सुशील को एक वर्ष हो चुका था। अब वह दूसरे वर्ष का छात्र था। कलकत्ता-लॉज में रहने के लिए उसे एक अच्छा सा सुविधाजनक कमरा भी मिल गया और खाने-पीने का प्रबन्ध भी वहाँ हो गया था।

कालेज के सभी प्रोफेसर सुशील को चाहते थे; सह-पाठियों से भी उसकी गाढ़ी छनती थी। एक वर्ष में ही वह सर्वप्रिय छात्र बन गया था। कालेज के खेल-कूद में भी सुशील किसी से पीछे नहीं था।

समाज-सेवा के कार्यों में सुशील की स्वभाविक रुचि थी, इसलिए अन्य सभी कार्यों से अवकाश निकालकर वह दीन-दुखियों की सेवा में भी सदा अग्रसर रहता। जाति-पाँति की संकुचित विचार धाराओं से वह प्रारंभ से ही मुक्त था। जन सेवा की अपनी इस प्रवृत्ति के कारण थोड़े ही समय में जन समुदाय के बीच में भी सुशील की पर्याप्त ख्याति हो गई थी।

इस बार ग्रीष्मावकाश में सुशील अकेला ही अपने घर बर्दवान गया, कारण प्रोफेसर दास किसी कार्य-विशेष से जा नहीं सके। सुशील ने अपने आने की कोई सूचना भी घर नहीं भेजी। सूचना भेजने पर डाक्टर मोहन उसे लेने के लिए अपनी मोटर स्टेशन पर भेज देते और ताँगे में बैठकर चारों ओर के दृश्यों का अवलोकन करने से वह वंचित रह जाता। सुशील को लाहौर में एक वर्ष अकेले रहकर अब किसी पिटी लकीर पर

चलना पसन्द नहीं था। इसी लिए वह ताँगे में बैठ कर ही अचानक अपने घर जा पहुँचा।

जब सुशील ने जाकर दरवाज़ा खटखटाया, तो माली ने आकर द्वार खोला और अकचकाकर कहा—'अरे, छोटे बाबू! आओ, आओ!' और लपक कर ताँगे पर से सामान उठा कर भीतर रखने लगा।

माली की आवाज से परिवार के सभी लोगों को जब ज्ञात हुआ कि सुशील आया है, तो सब के सब आँखें मलते हुए उसके पास आ पहुँचे। डॉक्टर मोहन ने सुशील के पास आकर कहा—'अरे! तुमने अपने आने की सूचना भी न दी! व्यर्थ ताँगे में आने का झमेला मोल लिया।

माँ स्नेहसिक्त वाणी में बोल उठीं—'कपड़े बदल डालो, बेटा! अभी चाय तैयार होती है, तभी आराम से सब लोग बात करेंगे।

सब लोग हाथ मुँह धोने लगे। बात-की-बात में चाय भी तैयार हो गई और सब लोग चाय की मेज के चारों ओर आ बैठे।

चाय पीते-पीते सुशील की माँ ने कहा—'कितना दुबला हो गया है, बेटा!'

रमा ने तत्काल बात काटते हुए कहा—'माँ की ममता का क्या कहना! भैय्या सवाया दीख रहा है; पर माँ कहती हैं कि दुबला हो गया है!'

'यह क्या व्यर्थ की बातें छेड़ दीं? सवेरे सवेरे! डॉ० मोहन ने कुछ खीझ भरे स्वर में कहा और सुशील की ओर देखकर कहा—'हाँ, यह सुनाओ बेटा, तुम्हारा मन वहाँ ठीक से लग गया या नहीं? प्रोफेसर दास से तुम प्रति दिन मिलते ही

होंगे ? लाहौर शहर तुम्हें कैसा लगा ? पढ़ाई-लिखाई तो अच्छी चल रही है न ?'

इतने सारे प्रश्न एक साथ सुनकर सुशील क्षण भर के लिए अकचकाकर रह गया। एक प्याला चाय वह अब तक पी चुका था। अभी वह एकाध और पीना चाहता था; किन्तु पिताजी के इतने सारे प्रश्न सुनकर उसने चाय पीना बन्द कर दिया और एक एक प्रश्न का उत्तर देते हुए वहाँ के रहन-सहन, खाने-पीने की व्यवस्था, प्रो० दास के सौजन्य आदि का विवरण ब्योरेवार देने लगा।

लाहौर से सुशील बहुत से फल ले आया था। डाक्टर मोहन ने इन फलों में से थोड़े-थोड़े फल अपने मित्रों के घर भेज दिए। कुछ फल रमेश के घर भी भेजे गए।

रमेश को जब पता चला कि सुशील आ पहुँचा है, तो वह सोल्लास दौड़ा आया। बहुत देर तक दोनों मित्र इधर-उधर की बातें करते रहे। चलते समय रमेश ने सुशील और रमा को दूसरे दिन अपने घर भोजन करने के लिए आमंत्रित किया।

दूसरे दिन रविवार था। इस विचार से रमेश का अनुरोध बिना किसी टीका-टिप्पणी के तत्काल सहर्ष स्वीकार कर लिया गया।

रमा और सुशील दोनों ने आज साधारण से वस्त्र पहन रक्खे थे—ऐसे जिनमें किसी प्रकार की शृँगार प्रियता अथवा दिखावे की झलक तक नहीं थी। रमा के शरीर पर आधी बाँहों का एक ब्लाऊज और सीधी सादी बूटीदार धोती और पैरों में साधारण सी चप्पलें थीं। सुशील ने खादी का एक ढीला-ढाला सा कुर्त्ता, सफेद धोती और सादी चप्पलें पहन रक्खी थीं। दोनों ने आँखों पर धूप के चश्मे लगाए और पैदल ही रमेश के घर चल दिये।

६

रमेश अपने घर के फाटक पर सुशील और रमा की प्रतीक्षा में ही खड़ा था। ज्यों ही ये भाई-बहिन पहुँचे, वह तत्काल इन्हें ऊपर अपने कमरे में ले चला। सीढ़ियों पर चढ़ते-चढ़ते रमेश पूछ बैठा—'इतनी धूप में पैदल ही क्यों चले आये, भाई? घर में मोटर रहते पसीना बहाने की क्या आवश्यकता थी?'

'घर में मोटर हो, तो हर घड़ी उसी पर जाने की आवश्यकता मैं नहीं समझता।' सुशील ने उत्तर दिया।

'मेरा अभिप्राय यह नहीं है, सुशील!' रमेश ने उसकी बात काटते हुए आत्मीयता के साथ कहा—'पर इस समय धूप कितनी तेज़ है!'

'ओहो!' सुशील ने विद्रूप-स्वर में कहा—'तो संभवतः तुम यह कहना चाहते हो कि ऐसी गर्मी में कोई भी व्यक्ति पैदल नहीं चलता?'

'अच्छा, बाबा!' रमेश ने परास्त होते हुए कहा—'तुमसे वाद-विवाद कौन करे?'

अब तक ये लोग ऊपर के कमरे में पहुँच चुके थे। रमेश ने कुर्सियों की ओर संकेत करते हुए कहा—'लो, बैठो और आराम करो।' और पंखे का स्विच दबा दिया।

'अच्छा, खाने में तो अभी थोड़ी-सी देर है।' रमेश ने कहा—'इसलिए, खाने के पहले क्या पियोगे—शरबत या...... ?

'शरबत ठीक रहेगा।' रमा ने बीच में ही कह दिया।

इसी बीच लज्जा भी कमरे में आ पहुँची। उसने नौकर को बुलाकर शरबत लाने का आदेश दिया।

पाँच मिनट के भीतर नौकर शरबत के गिलास ले आया। चारों ने रुचिपूर्वक शरबत पिया। नौकर खाली गिलास लेकर नीचे चला गया, तब रमेश ने लज्जा से पूछा—'आज प्रातः ही पिता जी कहाँ गए हैं, लज्जा ?'

'क्या वे मुझे बतलाकर ही कहीं जाते हैं ?' लज्जा ने तुनक कर उत्तर दिया।

'यह मैं कब कहता हूँ ?' रमेश ने कहा—'फिर भी सम्भव है तुझे पता हो।'

'मेरे विचार से वे अपने हैडक्वार्टर कलकत्ते गए हैं।' लज्जा ने कहा—'और शायद कल तक वापस आएँगे।'

'यह तो शुभ समाचार है भई !' सुशील बीच में ही बोल उठा—'बहुत दिनों से मेरे कान लज्जा देवी के कोकिल कण्ठ से संगीत सुनने के लिये छटपटा रहे हैं। आज सुयोग सामने है। क्या मैं आशा करूँ कि लज्जा देवी मेरा अनुरोध पूरा करेंगी ?'

सहज लज्जा से लज्जा देवी के कपोल रक्तिम हो उठे। अपनी कुर्सी से उठते हुए वह धीरे-धीरे पियानो की ओर बढ़ गई और उसकी सधी हुई अँगुलियाँ पियानो के स्वरों के साथ खेलने लगीं। धीरे-धीरे पियानो की स्वर-लहरियों के साथ लज्जा के कोकिल कण्ठ से मनमोहक स्वर-लहरी प्रस्फुटित हो उठी।

गीत अभी समाप्त भी न हुआ था कि लज्जा की माता जी सहसा वहाँ आ पहुँचीं और बोलीं—'पगली ! क्या गानों से ही इन दोनों का पेट भरेगी। चलो, भोजन तैयार है।'

और बिना किसी के उत्तर की प्रतीक्षा किए ही वे वापस चली गईं। संभवतः इन लोगों के मनोरंजन में वे किसी प्रकार की बाधा पहुँचाना ठीक नहीं समझती थीं।

लज्जा ने अपना गीत पूरा किया और सब के सब एक साथ नीचे खाने के कमरे में एक मेज के चारों ओर जा बैठे। भोजन प्रारंभ ही हुआ था कि सहसा एक युवक ने अन्दर प्रवेश किया। इस नवागन्तुक को देखते ही रमेश ने कहा—'आओ, भाई भगतसिंह! ठीक समय पर आये हो। हमारे साथ ही तुम भी भोजन करो।' फिर सुशील का परिचय देते हुए भगतसिंह से कहा—'यह रहे मेरे पुराने मित्र सुशील कुमार जी! रमा देवी के भाई हैं। लाहौर के मेडिकल कालेज के सर्वप्रिय छात्र।' सुशील को नवागन्तुक का परिचय देते हुए कहा—'यह हैं भगतसिंह जी हमारी यूनीवर्सिटी के अनुसन्धान-विद्यार्थी!'

भगतसिंह बिना किसी संकोच के इन सबके साथ भोजन करने बैठ गया और बोला—'हाँ, भाई! तुम अपनी वक्तृता चलाये रक्खो और मैं अपने भोजन की गतिविधि की जाँच करलूँ।' और रमा की थाली से लड्डू उठा कर भगतसिंह ने कहा—'बहिन, तुम्हें तो यह वस्तु रुचती नहीं, फिर क्यों इसे तुम्हारी थाली में रहने दूँ?' फिर लज्जा की ओर घूम कर वह बोला—'वाह! बहिन, तुम तो इतनी दूर बैठी हो कि तुम्हारी थाली तक मेरा हाथ ही नहीं पहुँचता।'

लज्जा ने मुसकराते हुए अपनी थाली का लड्डू उठाया और भगत सिंह को देते हुए कहा—'हाँ-हाँ, यह भी ले लो, नहीं तो तुम्हारा मन ललचाता रहेगा।'

भगतसिंह ने माता जी को कमरे में आते देखा, तो झटपट अपना हाथ-मुँह पोंछ डाला। एक अत्यन्त भोले-भाले लड़के की

भाँति उनका अभिवादन किया। माँ ने भगतसिंह को एक ओर बैठा देखकर कहा—'अरे, बेटा! तू कब आ पहुँचा? ठहर, मैं तेरे लिए भी खाना लिये आती हूँ।'

'नहीं माता जी!' भगतसिंह ने झट से कह दिया—'खाना लाने की आवश्यकता ही क्या है? मैंने तो इन भाई-बहिनों की जूठन से ही अपना पेट भर लिया है।'

सुशील की ओर घूम कर रमेश की माँ ने कहा—'देखो सुशील, यह भी मेरा एक पागल बेटा है।'

सुशील ने सुना, तो वह अपने आपको रोक न सका। सहसा बोल उठा—'हाँ, माताजी! आपके यहाँ बहुत-से पगले बेटे और पगली बेटियाँ हैं। इस घर को ही इन सबने एक पागलखाना बना रक्खा है। मुझे आये केवल दो ही दिन हुए हैं; पर इतने थोड़े समय में ही मैं सब कुछ समझ गया हूँ। यही कारण है कि अब मैं अपने विचार प्रकट किए बिना नहीं रह सकता।'

सब लोग अवाक् हो कर सुशील की बात सुनने लगे। उसने अपनी बात आगे बढ़ाई—'जिस ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य्य कभी अस्त नहीं होता, उसे ये मुट्ठी भर व्यक्ति इधर-उधर दो-चार बम गिरा कर अथवा दस-पाँच निरपराध विदेशियों का खून बहा कर परास्त नहीं कर सकते। यदि यह सम्भव होता, तो सैंकड़ों वर्ष तक उनका जुआ हमारे कन्धों पर न रहता। हम निरस्त्र हैं, अतः खून-खराबी से अपने देश को मुक्ति नहीं दिला सकते। केवल एक ही उपाय है, जिसके द्वारा हमें सफलता मिल सकती है और वह है अहिंसात्मक शान्ति पूर्ण विरोध तथा आर्थिक असहयोग।'

एक क्षण रुक कर सुशील ने अपनी बात जारी रक्खी—

'अँगरेज़ हमारे देश में व्यापार करने के लिए आए थे। भारत-वासियों की पारस्परिक कलह का पूरा-पूरा लाभ उठा कर वे अपनी बुद्धि-कौशल से, छल से, बल से यहाँ के शासक बन बैठे। अब तक इनका वास्तविक लक्ष्य आर्थिक लाभ ही है। इन्हें आर्थिक लाभ न होने देना ही इन पर कुठाराघात करना है। इसके लिए हमें एकता के सूत्र में बँधकर विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार करना होगा, और स्वदेशी वस्तुओं को अपना कर अपने देश के उद्योग-धन्धों की उन्नति के साधन जुटाने होंगे। इसके साथ ही हमें अपने देश के सबसे बड़े शत्रु—अशिक्षा—को दूर भगाना होगा। देश के सभी नर-नारियों को सुशिक्षित करना हमारा पहला कर्तव्य होना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर सर्वथा शान्त होते हुए विदेशी सत्ता के नियमों का उल्लंघन भी हमें करना होगा। सभी प्रकार के कष्टों और कठिनाइयों का सामना करने के लिए हमें तत्पर रहना होगा, तब कहीं जाकर हमें अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो सकेगी।'

सुशील की ओजस्विनी एवं मार्मिक वाणी इस बात की सूचक थी कि उसकी वक्तृता शीघ्र समाप्त होने वाली नहीं। कदाचित् इसीलिए रमा ने उसे टोकते हुए कहा—'भैय्या! अपनी-अपनी विचारधारा ही तो है। चलो, देर बहुत हो चुकी है। माता जी ने जल्द लौटने की बात कही थी। वे प्रतीक्षा कर रही होंगी।'

सुशील तत्काल खड़ा हो गया। रमा के साथ उसने सभी लोगों से साभिवादन विदा ली।

७

सुशील ने रमा को समझाने की बहुत चेष्टा की। आवेश में आ कर मनमानी कर बैठने की हानियों पर भी उसने अपने विचार व्यक्त किए।

रमा चुप चाप सब सुनती रही। स्वभावतः रमा गंभीर है। वह इस प्रकार की बातें सुनकर कभी विवाद में नहीं पड़ती। सुशील की किसी बात को उसने काटने की चेष्टा नहीं की। सुशील का व्याख्यान इस दशा में अधिक देर तक जारी न रह सका और रमा को इस अप्रिय वातावरण से शीघ्र ही मुक्ति मिल गई। वह अपने कमरे में चली गई।

थोड़ी ही देर बाद डाक्टर मोहन से भेंट करने सुरेन्द्र मोहन जी आ पहुँचे। उनके आने का प्रयोजन समझने में किसी को विलम्ब न लगा।

दो एक मिनट इधर-उधर की औपचारिक वार्ता के बाद सुरेन्द्र मोहन जी ने स्पष्ट शब्दों में डाक्टर मोहन से कहा—आजकल की हवा ने तो सभी लड़के-लड़कियों की बुद्धि भ्रष्ट कर रक्खी हैं। सम्भवतः इन तरुणों का यह विश्वास है कि विपल्व-कारी षड्यन्त्रों की रचना करके ये लोग देश को स्वतंत्र कर लेंगे। पर यह कितना थोथा विश्वास है। यह कितनी बड़ी नादानी है इन लोगों की !'

डाक्टर मोहन पुलिस-पदाधिकारी की ये बातें चुपचाप सुन रहे थे।

एक क्षण रूक कर सुरेन्द्र मोहन जी फिर बोले 'डाक्टर साहब! ये लड़के यह नहीं सोचते-विचारते कि सात समुद्र पार करके जो अँग्रेज हमारी दुर्बलताओं का पूरा-पूरा लाभ उठाकर हम पर शासन कर रहे हैं, क्या वे लोग ऐसे तूफानों और बाधाओं को चुटकी बजाते ठण्डा नहीं कर सकते? विप्लवकारियों का दमन करना भी उन्हें अच्छी तरह आता है। मुझे बड़ा क्षोभ है, डाकटर साहब, कि अपने लड़के और लड़की की ऐसी ही चेष्टाओं के कारण मुझे सावधान रहने की चेतावनी मिल चुकी है। पता नहीं इन दोनों के कारण मेरी क्या दुर्गति होती है। अस्तु मेरे भाग्य में जो लिखा होगा, वह तो मुझे भोगना पड़ेगा; पर आज मैं आपको यही चेतावनी देने आया हूँ कि आप भी अपनी पुत्री रमा को इस मार्ग पर चलने से रोक लें तो अच्छा हो। अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा पुलीस की आँखें मेरे पुत्र, पुत्री और आपकी रमा पर अधिक केन्द्रित हैं।'

डाक्टर मोहन ने एक लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा—'भाई आजकल की सन्तान पर नियन्त्रण करना सम्भव नहीं। मैं एक बार नहीं, अनेक बार रमा को समझा चुका हूँ; किन्तु उसकी गतिविधि में मुझे तनिक भी अन्तर नहीं दीखता। सुशील ने भी उसे बहुत समझाया-बुझाया; किन्तु उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। सबसे बड़ी कठिनाई तो यह है कि ये लोग चुपचाप सब सुन लेते हैं; कुछ कहते ही नहीं, और करते वही हैं, जो इनके मन में आता है। रमा के मित्र वर्ग का आना-जाना भी पूर्ववत् है। कभी-कभी इच्छा होती है कि रमा को लेकर कहीं दूर चला जाऊँ। कभी मन में आता है इसका विवाह कर दूँ; किन्तु उसकी पढ़ाई का ध्यान आते ही यह सब

विचार छोड़ देने पड़ते हैं। सोचता हूँ, कि यह वर्ष किसी तरह कट जाए, तो रमा बी० ए० हो जाएगी। पर यह एक वर्ष तो अब मुझे युगों सा भारी प्रतीत हो रहा है। मैं तो घूम फिर कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचता हूँ कि अपना अपना कर्मफल हम सभी को भोगना पड़ेगा—इससे मुक्ति नहीं। मैं तो विकट असमंजस में पड़ गया हूँ।'

सुरेन्द्र मोहन जी के मुख पर निराशा की एक स्पष्ट छाप दीख पड़ी। अपनी कुर्सी से वह उठ खड़े हुए और डाक्टर मोहन के कान के पास अपना मुँह करके धीमे स्वर में बोले—'बहुत सावधान रहिए, डाक्टर साहब! घर में कोई आपत्ति-जनक वस्तु न रहने दीजिए। समय बड़ा वैसा है' और वह तेजी से चले गए।

दूसरे दिन प्रातः काल होने के कुछ ही समय पूर्व एक स्त्री अपनी गोद में छोटे से बच्चे को लिए हुए रमा के घर में आई और चुपचाप रमा के कमरे में चली गई। दो मिनट के भीतर ही वह रमा से कुछ कह-सुनकर शीघ्र ही घर से बाहर चली गई। उसके पीछे-पीछे रमा भी चुपचाप अपने कमरे से बाहर निकली और घर में बिना किसी प्रकार की सूचना दिये ही पता नहीं, कहाँ चली गई। घर में किसी को इस सबका कोई पता नहीं चल सका।

घर से बाहर गए अभी रमा को आध घण्टे से अधिक नहीं हुआ था कि सहसा पुलिस ने आकर डाक्टर मोहन का घर चारों ओर से घेर लिया। लगभग दो घण्टे तक सारे घर की पूरी तलाशी ली गई; परन्तु कोई भी आपत्तिजनक वस्तु पुलिस बरामद न कर सकी। रमा के सम्बंध में पुलिस इंस्पेक्टर ने बहुत से प्रश्न डाक्टर मोहन से किए; किन्तु कोई सुराग

न मिल सका। अन्त में पुलिस-इंस्पेक्टर ने डाक्टर साहब से इस अप्रत्याशित कष्ट के लिए क्षमा माँगी और अपने दल-बल के साथ वह वापस चले गए।

डाक्टर मोहन को बाद में पता चला कि उसी दिन रमेश, भगतसिंह तथा उनके अन्य साथियों के घरों की भी तलाशी ली गई है।

पुलिस के जाने के थोड़ी देर बाद रमा लौट आई। मानो वह नित्य की भाँति कहीं सैर-सपाटा करने गई थी और उसे पुलिस द्वारा तलाशी लिये जाने का कुछ पता ही न था।

डाक्टर मोहन के चेहरे पर गहरी चिन्ता की छाप स्पष्ट थी। दिन भर वह प्रायः मौन रहे। यद्यपि आज ही सुशील लाहौर जाने वाला था; पर डाक्टर साहब की ओर से कोई व्यग्रता नहीं दीख पड़ी।

सन्ध्या समय सुशील लाहौर के लिए चल पड़ा। आज के क्षुब्ध वातावरण में चलते समय न तो सुशील ही कुछ कह-सुन सका, न उसके माता-पिता ही कुछ विशेष बात उस से कर सके। चलते समय सुशील ने रमा से केवल यही कहा— 'पता नहीं', अब हम लोग कब मिलेंगे।'

रमा भी आज इतनी खोई सी और उलझी सी थी कि उसने भाई के इन मार्मिक उद्गारों को भी भली-भाँति हृदयंगम नहीं किया।

सुशील अकेला ही स्टेशन चला गया। किसी को उसने अपने साथ ले जाने की आवश्यकता नहीं समझी। रमा ने साथ चलने का आग्रह भी किया किन्तु सुशील ने टाल दिया।

स्टेशन पर पहुँच कर सुशील ने टिक्ट खरीदा और चुपचाप गाड़ी में जा बैठा। कब गाड़ी चली, इसका ध्यान भी सुशील

को नहीं रहा। वह तो आज एक विचित्र मानसिक उलझन में झूल रहा था। गतवर्ष जब वह लाहौर जा रहा था, तब की विदा-वेला में और आज के प्रस्थान में कितना अन्तर था।

सुशील की सीट के सामने एक महिला बैठी थीं, जिस की गोद में एक छोटा सा बच्चा था। वह बच्चा जोरों से चीखने लगा, तो सुशील की विचारधारा अचानक ही छिन्न-भिन्न हो गई। उसका ध्यान इस बच्चे की ओर सहसा आकृष्ट हो गया।

सुशील ने देखा कि बच्चा लाख प्रयत्न करने पर भी चुप नहीं हो रहा है। उस महिला को सुशील ने कहा—'बहिन जी, यह बच्चा सम्भवतः प्यास से बेचैन हो रहा है। आप इसे पानी पिलाइए।'

महिला ने बच्चे को पानी पिलाया और सचमुच वह बच्चा पानी पीते ही चुप हो गया। इस पर उस महिला ने सुशील की ओर देखते हुए कहा—'क्यों न हो, आप डाक्टर जो बनने वाले हैं!'

उसी डिब्बे में निकट की ही दूसरी सीट पर एक वृद्ध सज्जन भी बैठे हुए थे। ऐसा प्रतीत हुआ कि यह बात उनके कानों में प्रवेश नहीं कर सकी।

सुशील यह बात सुनकर सहसा चौंक उठा। उसने तत्काल उस महिला से पूछा—'आप कैसे जानती हैं कि मैं डाक्टर बनने वाला हूँ।'

'मैं ज्योतिष जानती हूँ। मैं सब कुछ बतला सकती हूँ कि आप कहाँ रहते हैं, क्या करते हैं, आदि।' उस महिला ने मन्द मुसकराहट के साथ सुशील की ओर देखते हुए कहा।

सुशील आश्चर्य से भर उठा। उसने अपनी जिज्ञासा पूरी करने के लिए प्रश्न किया—'क्या आप यह भी बता सकती हैं

कि आज प्रातःकाल मेरे घर कोई विशेष घटना घट चुकी है ?'

'क्यों नहीं !' उस महिला ने पुनः मुसकराते हुए कहा—'मैं सब कुछ बतला सकती हूँ; किन्तु यह स्थान और समय इन बातों के उपयुक्त नहीं है। आप इतने से ही सब समझ लें कि आज प्रातः आपके घर पुलिस द्वारा तलाशी ली गई थी।'

सुशील के आश्चर्य की सीमा न रही। वह मानो सातवें आसमान से धरती पर आ गिरा हो। उसे लगा कि यह महिला निरन्तर उसे ऐसी बातें बतलाती रहे और वह चुपचाप सब सुनता रहे। किन्तु इसी बीच में गाड़ी एक जंकशन पर रुक चुकी थी। एक व्यक्ति उसके डिब्बे में आ कर वृद्ध सज्जन से कहने लगा—'बाबू जी ! पूड़ी-तरकारी ले आऊँ ?' सम्भवतः यह उनका नौकर था।

वृद्ध सज्जन ऊँचा सुनते थे। कुछ खीझकर उन्होंने जोर से पूछा—'क्या ?'

नौकर ने वृद्ध के कान के पास अपना मुँह कर के कहा—कुछ खाने को ले आऊँ ?'

'नहीं, आज मेरा व्रत है।' वृद्ध ने कहा और जेब से एक अठन्नी निकाल उसे घुमा-फिराकर भली-भाँति देखते हुए नौकर की ओर बढ़ाते हुए कहा—'लो, तुम कुछ लेकर खा-पी लो। परन्तु देख-भाल कर ही कुछ लेना। कोई रद्दी चीज न खा लेना।'

'अच्छा, बाबूजी !' कहकर वह नौकर चला गया।

वह महिला भी डिब्बे की खुली खिड़की में से इधर-उधर झाँककर सम्भवतः खाने-पीने की किसी वस्तु को खोज रही थी। सुशील ने उसके मन का भाव ताड़ते हुए कहा—'बहिन जी, यदि कोई आपत्ति न हो, तो मेरे साथ ही खाना खाने की कृपा कीजिए। मेरे पास पर्याप्त भोजन है।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं।' उस महिला ने सुशील की ओर

घूमते हुए कहा।

सुशील ने यह सुना, तो छोटी बाल्टी उठाकर वह तुरन्त प्लेटफार्म पर उतर गया और उसमें पानी ले लाया। फिर उसने सीट के नीचे से अपना बड़ा ट्रंक खिसकाकर दोनों सीटों के बीच में उसे जमाया और उस पर भोजन का डिब्बा खोलते हुए कहा—'लीजिए बहिन जी, भोजन कीजिये।'

दोनों व्यक्ति खाना खाने लगे। बच्चा एक ओर बैठा मिठाई खा रहा था। पास वाली तीसरी सीट पर वह वृद्ध सज्जन लेटे हुए थे, जो अब खर्राटे भरने लगे थे।

गाड़ी जब यहाँ से आगे बढ़ी, तो भोजन करते-करते ही सुशील ने उस महिला की ओर देखते हुए कहा—'क्या अब मैं आपसे कुछ पूछ सकता हूँ?'

'हाँ, अब आप निःसंकोच होकर पूछिए; क्योंकि हमारा साथी इस समय खूब खर्राटे भर रहा है।'

'खर्राटे न भी भरे, तो वह वज्र बहरा है।' सुशील ने कहा—'उसकी इतनी चिन्ता ही क्यों?'

'उसकी न सही, तो दूसरों की ओर से तो निश्चिन्त नहीं रह सकते।' महिला ने कहा—'जहाँ तक बने, अपनी गतिविधि का पता दूसरों को क्यों दिया जाय?'

'आप ठीक कहती हैं।' सुशील ने कहा—'अच्छा, आप कहाँ जा रही हैं?'

'जहाँ आप जा रहे हैं।'

'अर्थात्?'

'लाहौर।'

'लाहौर! क्यों?'

'कुछ आवश्यक काम है।'

'वहाँ आपका कोई है ?'

'हाँ, मेरा भाई है वहाँ।'

'क्या करते हैं आपके भाई साहब वहाँ ?'

'मेडिकल कालेज में द्वितीय वर्ष के छात्र हैं।'

'उनका नाम जान सकता हूँ ?'

'श्री सुशील कुमार।'

'क्या कहा, सुशील कुमार ?' सुशील ने कुछ चौंकते हुए पूछा—'और उनके पिता जी का नाम ?'

'डाक्टर मोहन चन्द्र !'

'क्या कह रही हैं आप ? डाक्टर मोहन चन्द्र ? कहाँ रहते हैं वे ?'

'बर्दवान में।'

सुशील बहुत ही घबरा गया। यह महिला उसे किसी मायाविनी की भाँति प्रतीत होने लगी। हक्का-बक्का-सा वह बोला—'मैं आपका अभिप्राय नहीं समझ सका।'

'इस सीधी-साधी-सी बात में कहाँ, कौन-सी ऐसी उलझन है, जो आपकी समझ में नहीं आ रही ?'

'मैं सच कह रहा हूँ, आपकी यह बात मैं एकदम नहीं समझ रहा !' सुशील ने अपना भोजन समाप्त करते हुए कहा—'क्या आपके भाई की सारी बातें मुझ से अक्षरशः मिलती-जुलती हैं ?'

'तो क्या आप केवल रमा देवी के भाई हो सकते हैं, मेरे नहीं ?' और बातों ही बातों में इस महिला ने रमा के कार्यों की सारी कथा कह डाली। यह अनुरोध भी उसने सुशील से कर दिया कि इस सम्बंध में वह एक शब्द भी कभी किसी से न कहे।

एक बार रुककर उस महिला ने गिलास भर पानी पिया

और आगे कहा—'देखिए, जिस प्रकार राजसत्ता का गुप्तचर विभाग (सी. आई. डी.) होता है वैसे ही मेरी पार्टी के गुप्तचर विभाग का उत्तरदायित्व मेरे कन्धों पर है। आज प्रातःकाल मैंने ही आपके घर पहुँचकर रमा बहिन को सतर्क कर दिया था, उसके पास एक भयानक षड्यंत्र की रूपरेखा थी। और मुझे प्रसन्नता है कि मेरी सतर्कता के कारण पुलीस को आपके घर की तलाशी लेने पर भी कोई आपत्तिजनक वस्तु नहीं मिल सकी। मेरे साथ यह जो बच्चा आप देख रहे हैं, यह मेरा बच्चा नहीं है ; परन्तु यही मेरा कवच है, जो सदा मेरी रक्षा करता है। बस, यहाँ से लौट कर इसे इसकी माँ को सौंप दूँगी। जब काम होगा, फिर इसे अपने साथ ले लूंगी। मेरी नेत्री रमा देवी की आज्ञा थी कि मैं आपके साथ यात्रा करूँ और आप को ये सारी बातें बतला दूँ। मैं ने अपना कर्त्तव्य पूरा कर दिया, अब आपकी इच्छा है, अपने लिए चाहे जिस पथ का चुनाव करें। यह भी हो सकता है कि आप किसी कारण हमारा हाथ न बंटाना चाहें। हमें इस में भी कोई आपत्ति नहीं। लेकिन आप हमें स्वतंत्रता पूर्वक अपने निर्धारित मार्ग पर अग्रसर होने दीजिए। हमारी टीका-टिप्पणी करने से आपको कोई लाभ न होगा। यदि आप इतना ध्यान रख सकें तो आपका और हमारा दोनों का कल्याण होगा।'

इसी लम्बे भाषण में बहुत-सा समय बीत गया। इस बार जब गाड़ी रुकी, तो इस महिला ने बच्चे को गोद में उठाया और सुशील से यह कहकर कि उसका काम पूरा हो चुका है, ट्रेन से उतर गई। चलते समय उसने अपनी अयाचित धृष्टता के लिए सुशील से क्षमा-याचना भी की थी।

सुशील यह सब देख-सुनकर अवाक् रह गया। सुशील के

मन में नाना प्रकार के प्रश्न उठ रहे थे ? आखिर यह महिला थी कौन ? इसका नाम क्या था ? यह कहाँ रहती है ?

और सुशील को अपने आप पर ही एक खीझ हो उठी। जब तक महिला यहाँ थी, तब तक तो उसने ये प्रश्न उससे पूछे नहीं। अब उसके चले जाने पर ऐसे प्रश्नों का उठना न उठना बराबर था। वह चली गई; पर सुशील के सोचने-विचारने के लिए एक विकट समस्या छोड़ गई।

सुशील खिड़की में से झाँक कर देखने लगा कि वह महिला प्लेटफार्म पर कहीं हो, तो अब भी दौड़कर वह दो एक बातें उससे पूछ कर अपनी प्रबल जिज्ञासा का समाधान करने की चेष्टा करे; किन्तु जहाँ तक सुशील की दृष्टि जा सकी, उस महिला की छाया भी उसे नहीं दीखी।

सुशील चुपचाप अपनी सीट पर आकर बैठ गया। ट्रेन ने इसी बीच में सीटी दी और छक-छक भक-भक करती हुई वह अपने मार्ग का अतिक्रमण करने लगी।

सुशील का मन इस समय काफी उद्विग्न था। घर छोड़ने के समय से लेकर अब तक वह मानो एक ही समस्या में उलझा हुआ था। सामने की खिड़की में से दीखने वाले नीलाकाश में टिमटिमाते तारे इस समय उसे बड़े भले प्रतीत हो रहे थे। रात्रि के अंधकार में रेल मार्ग के दोनों ओर ऊँचे ऊँचे वृक्ष भी मानो एक समस्या बनकर पृथ्वी के वक्षः स्थल पर प्रश्नचिह्न के रूप में खड़े हुए थे—कदाचित् सुशील की ही समस्या की भाँति !

८

लाहौर पहुँचकर इस बार सुशील का मन पढ़ाई में पहले जैसा न लग सका। वह लाख चेष्टा करता लेकिन सब व्यर्थ। घर की विचित्र परिस्थितियाँ और रमा की अनपेक्षित गतिविधि उसे सदा चिन्तित बनाए रहती। उसके मन में सदैव उथल-पुथल मची रहती।

दिन-पर-दिन बीतते गए, परन्तु सुशील अपनी मनोदशा को नियंत्रित कर सकने में असमर्थ रहा। वह अपने ही विचारों में लीन रहता और धीरे धीरे अपने साथियों से भी दूर रहने की चेष्टा किया करता। पढ़ाई लिखाई, खेल कूद, मित्र-समागम आदि सभी बातों से वह अब खिंचता जा रहा था।

एक दिन ऐसी ही मनोदशा के बीच सन्ध्या समय उसने अपनी साइकिल उठाई और लारेंस गार्डन की ओर चल पड़ा। वहाँ पहुँच कर उसने अपनी साइकिल एक ओर लिटा दी और रंग बिरंग फूलों के बीच हरी घास पर जा कर बैठ गया। बगीचे में काफी चहल पहल थी। बूढ़े, बच्चे युवक-युवतियाँ, प्रेमी-प्रेमिकाएँ—सभी अपनी अपनी टोलियों के साथ इधर उधर बैठे थे या घूमते हुए अपना मनोरंजन कर रहे थे। बगीचे का वातावरण रंगीन था परन्तु सुशील की मनोदशा में इस सब से कोई अन्तर नहीं पड़ा। उसका अपना ही मन जब स्थिर नहीं था, तब विश्व की कोई भी रंगीनी, प्रकृति की कोई भी छटा, उसे पुलकित करने में सर्वथा अक्षम थी।

वहाँ से उठकर सुशील ने अपनी साइकिल उठाई और अपने निवासस्थान की ओर चल पड़ा। अभी वह बड़े डाकखाने के सामने ही पहुँचा था कि अचानक ही पीछे से तेज आती हुई एक मोटर उसकी साइकिल से आ टकराई। और सुशील अपनी साइकल के साथ ही सड़क की पटरी पर जा गिरा। सुशील अपने हाथ से ही जा रहा था, फिर भी इस मोटर ने जाने क्यों उसे यह धक्का देकर गिरा दिया। वह तो ईश्वरीय-देन ही समझीए कि ब्रेक लगते ही मोटर तत्काल रुक गई नहीं तो सुशील की हड्डी-पसली आज चकना चूर हो जाती।

सुशील के पटरी पर गिरते ही मोटर एक दम खड़ी हो गई और उसमें से एक भद्र महिला आकर तत्काल सुशील के पास जा पहुँची। हाथ का सहारा देते हुए सुशील को उठाते हुए उसने कहा—'मुझे सचमुच बड़ा खेद है। क्या इस अप्रत्याशित दुर्घटना के लिए आप मुझे क्षमा कर सकेंगे।'

चोट साधारण थी। एक घुटना छिल गया था। और एक बाँह पर भी हलकी-सी चोट लगी थी। इस महिला का सहारा पाकर सुशील तत्काल उठ बैठा और अपना दाहिना हाथ बाईं भुजा पर फेरते हुए उसने कहा—'मालूम पड़ता है, आपने अभी-अभी 'ड्राविंग' सीखा है। तनिक सँभलकर चलाया कीजिए। मुझे कोई गहरी चोट नहीं आई। आप निश्चिन्त होकर जा सकती हैं। घबराने की कोई बात नहीं। मैं पुलिस तक नहीं जाऊँगा'

बेगम नवाज खाँ अभिवादन करके अपनी कार में जा बैठीं। गाड़ी स्टार्ट करते हुए उनके मन में एक प्रश्न उठा—'क्या मैंने अभी-अभी ड्राइविंग सीखा है?' फिर यह सोचकर

सन्तोष कर लिया—'हुँ: ! जिसे चोट लगेगी, वह तो ऐसा ही कहेगा !' बेचारा……… ।

मोटर जब आगे बढ़ गई, तब सुशील ने भी अपनी साइकल उठाई और धीरे-धीरे पैदल ही अपने मेस की ओर चल पड़ा। मेस में पहुँचकर उसने स्वयं अपनी मरहम-पट्टी कर ली और जाकर पलँग पर लेट गया।………

× × ×

गर्मी की छुट्टियाँ आ पहुँची। पर इस बार सुशील ने बर्दवान न जाने का पक्का निश्चय कर लिया था। वहाँ जाकर वह अपनी उन्मन-सी मनोदशा में कोई सुधार तो कर न सकेगा, उलटे रमा की गतिविधि से उसकी मानसिक उद्विग्नता और अधिक बढ़ जाने की सम्भावना थी।

इसलिए छुट्टियाँ प्रारम्भ होते ही उसने अपना सामान समेटा और अपने एक सहपाठी रामगोपाल के साथ श्रीनगर जा पहुँचा। रामगोपाल ने कई बार आग्रह किया था कि सुशील एक बार उसके साथ जाकर श्रीनगर की सैर कर आवे। सुशील ने सोचा मित्र का आग्रह भी इस बार पूरा कर दूँ और उससे मनोदशा को भी कुछ अवधान मिल सकेगा।

श्रीनगर पहुँचकर सुशील अपने सहपाठी रामगोपाल के ही घर उतरा। दिन-दिन भर सुशील अपने मित्र के साथ श्रीनगर के आस पास का अनुपम वैभव देखता और रात में गहरी नींद का आनन्द लेता।

एक दिन दोनों मित्र सैर-सपाटा करने पहलगाँव जा पहुँचे और रात वहीं के एक होटल में बिताई। एक दिन के लिए एक कमरा इन दोनों ने किराए पर ले लिया था। सारा होटल लकड़ी का बना हुआ था। ये जिस कमरे में टिके हुए थे, वह

ऊपरी मंजिल पर था। एक सीढ़ी द्वारा चढ़कर इस कमरे में पहुँचने का मार्ग था।

होटल के उस कमरे की एक खिड़की पश्चिम की ओर खुलती थी। सुशील ने उस खिड़की में से झाँक कर जो देखा तो वह मुग्ध-सा अवाक् रह गया। सामने हिमाच्छन्न गगन चुम्बिनी शैल श्रेणियां चाँदी का जगमग मुकुट लगाए गर्व और गौरव से अपना मस्तक आकाश की ओर उठाए खड़ी थी। उपत्यका की वनाली और हरी-भरी पहाड़ियाँ मानो उस हिम-गौरी को घेरे हुए किसी नृत्योत्सव की तैयारी कर रही थी। इन पहाड़ियों को एक लहराती-इठलाती नदी दो भागों में बाँट रही थी। दूसरी ओर सन्ध्या की उस गैरिक आभा से अनुरंजित आकाश में तैरते हुए बादलों के पागल बच्चे मानव-मात्र को मुग्ध कर देने की क्षमता रखते थे। कहीं किसी पहाड़ी के अन्तराल से निकलते कल-कल निनाद करते, झरने बड़े ही मोहक प्रतीत हो रहे थे। नाना रूपों और नाना रंगों के इस अनोखे सम्मिश्रण को सुशील विस्मय-विमुग्ध-सा अपलक नयनों से निहारता रह गया।

कल-कल निनाद करते झरनों का संगीत और वृक्षों के पत्तों से उन्मुक्त पवन के टकराने का अप्रतिम स्वर सुशील के कर्णरन्ध्रों में एक अप्रत्याशित उल्लास की सृष्टि कर रहा था वह ठगा-सा यह सब देख रहा था कि सहसा रामगोपाल ने आकर उसके कन्धे पर अपना हाथ रक्खा। मानो किसी ने उसे कल्पना लोक से पृथ्वी पर घसीट लिया हो।

रामगोपाल ने कहा—'चलो, चाय पी लो भाई! यह दृश्ययावलियाँ फिर देखते रहना।'

दोनों मित्रों ने साथ साथ चाय पी, फिर कपड़े बदले और सैर

सपाटे के लिए निकल पड़े। सुशील को लगता, मानों वह इसी देह से नन्दन-कानन में पहुँच चुका है।

दूसरे दिन दोनों मित्रों ने अपने लिए एक तम्बू की व्यवस्था कर ली और होटल का कमरा छोड़कर उसमें जा टिके। भोजन तैयार कराने की व्यवस्था भी उसी तम्बू में कर ली गई।

श्रीनगर के चारों ओर वनश्री का वैभव इस तरह बिखरा हुआ है कि सात दिन बीत गए और इन मित्रों को कुछ पता ही न चला। किराए के बढ़िया घोड़ों पर बैठकर दोनों मित्र किसी दिन तुलियान झील जाते, तो कभी चन्दनबाड़ी अथवा अन्य किसी स्थान पर जाकर मनोविनोद करते।

सुशील को एक दिन सहसा ध्यान आया कि लगभग तीन सप्ताह से उसने बर्दवान पत्र नहीं भेजा है। पिताजी जाने क्या सोचते होंगे। वह तत्काल पत्र लिखने बैठ गया। पत्र में उसने अपने मित्र के आत्मीयतापूर्ण आग्रह पर यहाँ आने का उल्लेख करते हुए श्रीनगर, पहलगाँव तथा अन्य पहाड़ी स्थानों के मनोहर प्राकृतिक दृश्यों का भी यत्किंचित् वर्णन किया। अमरनाथ की यात्रा करने की सम्भावना भी प्रकट करते हुए सुशील ने इस बार ग्रीष्मावकाश में घर न आ सकने की असमर्थता पर क्षमा याचना करते हुए कुछ रुपए भेज देने का अनुरोध भी कर दिया।.........

कई दिनों से लगातार पहाड़ी स्थानों के शीतल वातावरण में रहते-रहते एक दिन रामगोपाल का स्वास्थ्य कुछ बिगड़ता प्रतीत हुआ, इसलिए दोनों मित्र श्रीनगर वापस आ गए। कुछ दिनों में जब रामगोपाल का स्वास्थ्य सुधर गया, तब दोनों मित्र लाहौर आ गए। अमरनाथ जाने का अवसर हाथ न लग सका।

इसी प्रकार दो वर्ष और बीत गए और सुशील चतुर्थ वर्ष में पहुँच गया। उसका अध्ययन पूर्ववत् चल रहा था। उसकी सर्वप्रियता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। प्रोफेसर दास की उस पर बराबर कृपा रहती। वे बीच-बीच में आकर उसकी कठिनाइयों को यथासाध्य दूर करने की चेष्टा किया करते और उसे अपने मार्ग पर सोत्साह अग्रसर होने की प्रेरणा दिया करते।

६

एक दिन संध्या समय लगभग छः बजे सुशील कालेज से मैस की ओर आ रहा था। लॉज रोड के मोड़ पर बीन बजाते हुए एक सँपेरा साँपों का खेल दिखला कर जनता का मनोरंजन कर रहा था। दर्शकों की भीड़ के पास से जब सुशील जा रहा था, तो बीन की मधुर स्वरलहरी ने उसे भी ऐसा कुछ आकृष्ट किया कि वह भी साँपों का खेल देखने लगा।

सहसा एक चीख उसके कानों में प्रविष्ट हुई, जिससे वह चौंक उठा। उसकी आँखें उसी ओर उठ गईं, तो देखा कि ऊपरी छज्जे से कोई वस्तु नीचे की ओर लुढ़कती आ रही है। वह भली भाँति देख भी न सका था कि क्या गिर रहा है और सहसा वह वस्तु ठीक उसी के ऊपर आ गिरी, जिस के लगते ही वह मूर्च्छित हो कर गिर पड़ा।

यह अनपेक्षित काण्ड होते ही सारी भीड़ नौ दो ग्यारह हो गई। सपेरा भी अपनी पिटारी समेटकर वहाँ से सटक-सीताराम हो गया।

जिस मकान के छज्जे से यह तरुणी सहसा नीचे गिरकर सुशील को भी अपने साथ ही आहत और मुर्च्छित कर बैठी थी, उस मकान के मालिक श्री नन्दा घबराए हुए नीचे आए और दोनों मूर्च्छित व्यक्तियों को घर के भीतर ले गए। तत्काल डाक्टर बुला कर मरहम-पट्टी आदि कराई गई। तरुणी को अधिक चोट नहीं लगी थी—केवल सिर में कुछ चोट आ गई

थी; किन्तु सुशील को कुछ अधिक चोटें आईं थीं। रात के दस बजे कहीं सुशील की मूर्च्छा हटने के चिह्न दृष्टिगोचर हुए। डाक्टर दवाई दे कर चला गया।

प्रातः फर डाक्टर आया और सुशील को भली भाँति देख भालकर उसने सन्तोष प्रकट करते हुए कहा—'अब चिन्ता की कोई बात नहीं रही। आप शीघ्र ही स्वस्थ हो जायँगे।'

डाक्टर जब चला गया, तब सुशील के पास एक अधेड़ से सज्जन आये, जिनके साथ एक तरुणी भी थी। तरुणी का परिचय देते हुए कल की घटना संक्षेप में सुनाकर ये सज्जन बोले—'यह मेरी पुत्री लीलावती है। ग्रेजुएट होकर आजकल ट्रेनिंग कालेज में पढ़ रही है। यही तो कल छज्जे पर खड़ी-खड़ी उस सँपेरे का खेल देख रही थी और सहसा आगे को इतना झुक गई कि छज्जे का जंगला इसका भार न सँभार सका और यह नीचे जा गिरी। मैं ही इस मकान का स्वामी हूँ।' मेरा नाम नन्दा है। मैं अवकाश प्राप्त इंजिनियर हूँ।

सुशील ने ध्यानपूर्वक सब सुना और देखा कि तरुणी के सिर पर भी एक सफेद पट्टी बँधी हुई है। इस समय वह नीले रँग की बढ़िया साड़ी, गहरा नीला ब्लाऊज़ और कामदार आकर्षक जूते पहने थी।

सुशील एक पलँग पर टेक लगाए बैठा था। उसके बाँए हाथ पर पट्टी बँधी हुई थी, जो तिकोने रुमाल के सहारे उसकी गर्दन से वक्षःस्थल पर झूल रहा था। सिर और गले पर भी पट्टियाँ बँधी हुई थीं।

तरुणी की वेश-भूषा देखकर सुशील मुग्ध हो गया। उस की समझ में नहीं आ रहा था कि कल यह दुर्घटना आखिर हो कैसे गई।

मिस्टर नन्दा सुशील के पलँग के निकट ही एक कुर्सी पर बैठ गए। लीलावती एक दूसरी कुर्सी का सहारा ले कर खड़ी रही। पिता-पुत्री दोनों ने धीरे धीरे सुशील का सारा परिचय पूछ लिया।

सुशील इस समय अपने आपको कुछ कुछ स्वस्थ अनुभव कर रहा था, अतः उसने नन्दा साहब से यह अनुरोध किया कि उसके लॉज में उसे भेजवाने की व्यवस्था कर सकें, तो उसे प्रसन्नता होगी।

'सँध्या समय हम आपको आपके लाज में पहुँचा देंगे।' नन्दा साहब ने कहा—'तब तक आप कुछ और अधिक स्वस्थ हो जायँगे। इस समय तो आप जलपान करके हम लोगों को उपकृत कीजिए।'

और लीला ने तत्काल एक छोटी मेज सुशील के पलँग के के समीप ला रक्खी और जलपान की सामग्री सजाकर दो प्यालों में चाय डालते हुए बोली—'आप कितनी चीनी लेंगे ?'

'यही दो चम्मच !' सुशील ने धीमे स्वर में लीलावती की ओर देखते हुए कहा।

चाय पी चुकने पर पिता-पुत्री दोनों चले गए। कुछ देर में एक नौकर ने आकर सुशील से पूछा—'बाबूजी, दोपहर में आप क्या खाना पसन्द करेंगे—चावल या रोटी ?'

'इस समय तो केवल दूध ही पसन्द करूँगा।' सुशील ने धीमी वाणी में कह दिया—'दूध पीने में मुँह नहीं चलाना पड़ेगा और तकलीफ भी नहीं होगी।'

'जी अच्छा !' कहकर नौकर चला गया।

दोपहर में नौकर दूध और डब्ल रोटी लेकर सुशील के कमरे में उपस्थित हुआ। उसके पीछे ही मिस्टर नन्दा ने सुशील

को ठीक से भोजन करवाने के लिए लीला को भेज दिया। नौकर के पीछे लीला भी कमरे में प्रवेश करते हुए बोली—आपको आपत्ति न हो, तो मैं आपकी सहायता करूँ।

सुशील के उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही उसने आगे बढ़कर दूध के प्याले में कुछ चीनी मिलाकर डबल रोटी के दो-तीन टुकड़े भी भिगो दिए, फिर वह बोली—'लीजिए, अब तो यह एकदम तरल पदार्थ हो गया। इसे खाने में अब आपको कोई कष्ट न होगा और कुछ आधार भी हो जायगा।'

सुशील ने चार-पाँच चम्मच, जितना वह सुगमता से खा सका, चुपचाप खा लिया। इसके बाद वह सो गया।

संध्या समय नन्दा साहब स्वयं अपनी कार पर सुशील को उसके लॉज में ले गए। अत्यन्त सावधानी से उसे उसके कमरे में पहुँचा दिया और चलते समय आत्मीयता के साथ कहा—'देखो भाई, जब जिस वस्तु की अथवा हम लोगों की सेवा-सहायता की आवश्यकता समझो, बिना किसी संकोच के सूचना भेज देना। यों मैं स्वयं आते-जाते तुम्हारे स्वास्थ्य का पता लेता रहूँगा।'

सुशील ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—'मैं आप लोगों की आत्मीयता के लिए सदा आभारी रहूँगा। आप लोग चिन्ता न कीजिए। मैं शीघ्र ही ठीक हो जाऊँगा और स्वयं आकर आपके दर्शन करूँगा।'

सुशील के सिर पर प्यार से अपना हाथ फेर कर नन्दा साहब अपने घर चले गए।

१०

दुःख और कष्ट की घड़ियाँ ऐसे व्यक्तियों के लिए पहाड़-सी बोझिल बन जाती हैं, जिन्हें किसी की सहानुभूति नहीं मिलती अथवा सेवा-शुश्रुपा प्राप्त नहीं होती। किन्तु सुशील ऐसा व्यक्ति नहीं था। उसकी समाज-सेवा से परिचित-अपरिचित सभी उसके लिए सहानुभूति उड़ेलने के लिए उत्सुक रहते; उसके मधुर स्वभाव से मुग्ध सभी साथी उसकी सेवा-शुश्रुपा के लिए आतुर रहते और उसकी प्रखरता से प्रसन्न सभी प्रोफेसर उसके स्वास्थ्य-सुधार की कामना प्रकट किया करते। ऐसी दशा में सुशील की चोटें चुटकी बजाते ठीक हो गईं और वह शीघ्र ही अपने कालेज जाने लगा।

सुशील जब तक अस्वस्थ रहा, नन्दा साहब बराबर उसके पास आते-जाते रहे। फलतः सुशील से उनकी अब यथेष्ट घनिष्ठता हो चुकी थी। एक दिन किसी त्योहार के अवसर पर उन्होंने सुशील को अपने घर भोजन करने के लिए आमंत्रित किया। ठीक समय पर सुशील सहर्ष उनके घर जा पहुँचा।

पिता-पुत्री—नन्दा और लीलावती—दोनों ने सुशील का सोल्लास स्वागत किया। बैठक में तीनों इधर-उधर की बातें कर रहे थे। नन्दा साहब को अब तक सुशील के परिवार का पूरा-पूरा परिचय मिल चुका था, अतः प्रसंगवश उन्होंने कहा—'आप इतने बड़े डाक्टर के पुत्र हैं, फिर भी आपकी इतनी सादी वेश-भूषा देखकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। हमारे यहाँ तो

साधारण से परिवारों के लड़के भी फैशन के अनन्य पुजारी दीखते हैं।'

'मेरी सादगी का एक रहस्य है, नन्दा साहब!' सुशील ने मुस्कराते हुए कहा—'इसका श्रेय एक अपरिचित तरुणी को है—उस तरुणी को, जिसे मैंने कलकत्ते की एक ट्राम में देखा था। वह एक खद्दर की सफेद और सादी-सी साड़ी और सादा सा कुर्ता पहने थी। उसके हाथ में एक पुस्तक दबी हुई थी, जिस पर उसके नाम के साथ लिखा था—एम० ए० द्वितीय वर्ष। मैं उस समय बी० एस० सी०, प्रथम वर्ष का छात्र था और मेरा वेष बड़ा कीमती और सुन्दर था। मन-ही-मन मुझे अपने आप पर एक घृणा हो उठी। मैंने स्वयं को धिक्कारा और संकल्प कर लिया कि भविष्य में मैं सदा सादी और यथासम्भव खादी ही पहना करूँगा। और मुझे प्रसन्नता है कि मैं अपने उसी संकल्प की रक्षा अब तक बराबर किए जा रहा हूँ।

'क्या मैं पूछ सकती हूँ,' लीलावती ने बीच में ही सुशील को टोक दिया—'कि आपके यहाँ सभी छात्र इसी प्रकार सादी वेष-भूषा में रहते हैं?'

'साधारणतः यही बात है।' सुशील ने कहा—'और इसी में वे लोग आत्मीय आनन्द और सच्चे गौरव का अनुभव भी करते हैं।'

'हो सकता है,' लीला ने फिर कहा—'कि इसका मूल कारण उनका अर्थाभाव हो?'

'नहीं यह बात नहीं कही जा सकती।' सुशील ने मुसकराते हुए लीला की ओर देख कर कहा—'इन सादी वेश भूषा वालों में से अधिकाँश छात्र तो इतने सम्पन्न परिवारों के हैं कि प्रत्येक के घर में एक-एक मोटर कार का होना साधारण-

सी बात है। अनेकों के पास अपार सम्पति है। इन लोगों के शोफरों की वर्दी इनसे कहीं अधिक भड़कीली होती है।'

यह सुन कर लीलावती किसी गहरे विचार में डूब गई। इसी बीच भोजन की थालियाँ उनके सामने रख दी गईं और ये लोग भोजन की मेज पर जा बैठे।

सादी वेश भूषा और मूल्यवान वस्त्रों की तुलना में लीला का मन उलझ रहा था। उसकी यह उधेड़बुन बहुत देर तक जारी रही। भोजन करते-करते उसने सहसा सुशील से फिर पूछा 'क्यों जी, खाने-पीने में भी क्या आपके यहाँ सादगी ही बरती जाती है ?'

'सच बात तो यह है,' सुशील ने शालीनता के स्वर में कहा—'कि भोजन का जहाँ तक सम्बंध है, देश भर में आप लोगों का स्थान सर्वोपरि है। आप लोगों का खाना सादा पुष्टी-कारक और शीघ्र पचने वाला होता है। उसके तैयार करने में भी आप लोगों को बहुत कम परिश्रम करना पड़ता है। परन्तु हमारे यहाँ सर्वथा विपरीत बात है। हम लोगों का भोजन स्वादिष्ट तो अवश्य होता है, परन्तु उसमें पौष्टिक तत्त्व कम रहता है और उसकी तैयारी पर खर्च भी बहुत पड़ जाता है।'

बात चीत करते समय स्वभावतः सुशील धीरे-धीरे भोजन कर रहा था। यह देख लीला की माता जी ने कहा—'बेटा, तुम तो बहुत धीरे-धीरे खा रहे हो ! क्या बात है ? जो चीज तुम्हें अच्छी लगे, वही खाओ, बाकी चीजें पड़ी रहने दो।'

'माता जी !' सुशील ने झट से कहा—'मुझे सभी वस्तुएँ पसन्द हैं। लेकिन इतनी सारी वस्तुएँ जो मेरे सामने परोस दी गई हैं, मेरे लिए दो दिन के लिए पर्याप्त हैं। खाना

परोसने की यह रीति हमारे देश में सर्वत्र प्रचलित है, किन्तु इसे मैं अपव्यय समझता हूँ। यह हानिकारक भी है, इसमें भोजन का बहुत सा अंश व्यर्थ बच रहता है और जूठन के रूप में निम्नवर्ग के लोगों के घर चला जाता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से यह प्रथा ठीक नहीं है। इससे छूत की बिमारियाँ फैलती हैं। इस सम्बंध में विदेशों की प्रथा स्तुत्य है। कम-से-कम मैं तो उनकी प्रथा का बड़ा समर्थक हूँ। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी रूची और आवश्यकता के अनुसार ही खाद्य सामग्री लेता है। इस से न तो भोजन का कोई अंश व्यर्थ नष्ट होता है, और न किसी की बीमारी के फैलने का भय रहता है और न भोजन करनें वाले को अजीर्ण का शिकार भी नहीं होना पड़ता।'

सुशील की बातचीत से लीला मन-ही-मन बड़ी प्रभावित हुई। कितनी नपी-तुली और तर्कसंगत बात करता है यह तरुण! क्यों न हो, वह शीघ्र ही बड़ा डाक्टर होने वाला है।

इसी तरह के वार्त्तालाप के बीच जब भोजन समाप्त हुआ, तब सुशील ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए इन लोगों से विदा ली और अपने मैस की ओर चल पड़ा।

११

एक दिन एकाएक सुशील को समाचार मिला कि मि० नन्दा को कई दिन से ज्वर हो आया है। सुनते ही वह उनके घर पहुँचा और उसने उनकी सारी देख रेख अपने हाथ में लेली।

दवा डाक्टरों की ही चल रही थी; किन्तु परिचर्या में सुशील दिन-रात लगा रहता। मेडिकल कालेज के प्रतीभाशाली छात्रों में सुशील का विशेष स्थान था। समाज-सेवा की भावना उसकी नस नस में बस चुकी थी। अत: उसके हाथों में यश था। रक्त आदि की परीक्षा कराने में भी सुशील के कारण बड़ी सुगमता हो गई।

लगभग डेढ़ महीने के पश्चात् कहीं नन्दा साहब का मियादी बुखार टूटा। किन्तु इसके बाद भी लगभग एक महीने तक सुशील उनकी सेवा-शुश्रुषा में जुटा रहा। कारण, इस बुखार के टूट जाने पर भी इसके पुन: लौट आने की बड़ी आशंका रहती है। परन्तु सुशील की सतर्कता और सेवा-शुश्रुषा का सुफल अन्त में सामने आया और नन्दा साहब धीरे-धीरे चलने फिरने लगे।

सुशील अब भी संध्या समय नन्दा साहब के घर नित्य पहुँच जाता और उनका मन बहलाए रखने की चेष्टा किया करता।

एक दिन नन्दा साहब ने बात चीत करते-करते सुशील से कहा—'इस बार मैं मृत्यु के मुँह से जो लौट आया हूँ, उसका एक मात्र श्रेय तुम्हारी सेवा-शुश्रुषा को ही है, बेटा! अब मेरी इच्छा है कि मैं अपने भवन का दूसरा भाग तुम्हें समर्पित कर दूँ। मेरे प्रेम और कृतज्ञता का यह तुच्छ-सा उपहार यदि तुम

स्वीकार कर लो, तो मुझे आत्मीय शान्ति का अनुभव होगा।'

'आप तो जानते ही हैं, नन्दा साहब !' सुशील ने मुसकराते हुए कहा—'मैं अपने माता-पिता का इकलौता बेटा हूँ और आपके आशीर्वाद से मेरी पैतृक सम्पत्ति भी कम नहीं है।'

'मैं क्या जानता नहीं, बेटा !' नन्दा साहब ने अनुरोध के स्वर में कहा—'तुम सम्पन्न घर के रत्न हो और लोभ लालच तुम्हें दूर से ही नमस्कार करता है। फिर भी मेरी यह क्षुद्र-सी भेंट यदि तुम स्वीकार कर सको, तो मुझे अति प्रसन्नता होगी।'

आत्मीयता से ओतप्रोत अनुरोध को ठुकराना किसी भी भले मनुष्य के लिए सहज-सम्भव नहीं होता। तनिक भी लालसा न रहने पर भी सुशील को इस सम्बन्ध में अपनी स्वीकृति देनी पड़ी।

दूसरे ही दिन भवन के दूसरे भाग की रजिस्ट्री कराने के लिए नन्दा साहब ने एक प्रतिष्ठित वकील को अपने निवास-स्थान पर बुला भेजा। आवश्यक कागज़ सुशील के नाम लिखवाया गया और साक्षी के स्थान पर श्रीमती नन्दा ने हस्ताक्षर कर दिए। परन्तु लीलावती को इस कार्यवाही पर तनिक भी सन्तोष नहीं था। उसने स्पष्ट शब्दों में अपना विरोध प्रकट करते हुए कहा—'सुशील की सेवाओं का मूल्य, सच पूछा जाय तो किसी भी रूप में दिया ही नहीं जा सकता। यह नगण्य-सी भेंट तो उसका अपमान करना है। मैं समझती हूँ कि यदि उसे भवन ही भेंट करना है, तो क्यों न सारा मकान दे दिया जाय।' फिर कुछ रुककर लीला बोली—'यदि भवन का कुछ भाग आप अपने रहने के लिये बचाना ही चाहते हैं, तो जो भाग आप सुशील को देना चाहते हैं, उसे अपने लिए बचा लें और जिस बड़े हिस्से में हम लोग रहते हैं, यह उसे दे दें।'

वाद-विवाद ऐसा कुछ बढ़ा कि यथार्थ निर्णय उस दिन हो ही नहीं सका। वकील अधिक समय दे सकने में असमर्थ था, अतः आज यह कार्य स्थगित हो गया।

लीला अपने हठ पर अडिग-अचल रही। श्री नन्दा को अन्ततोगत्वा लीला का प्रभाव स्वीकार करना पड़ा और दूसरे दिन वकील को पुनः बुलवाकर मकान के बड़े भाग की रजिस्ट्री सुशील के नाम लिख दी गई। रजिस्ट्री करा लेने पर आवश्यक कागज-पत्र नन्दा ने अपने पास रख लिए और सुशील के जन्म-दिवस पर यह भेंट उसे दे दी गई। सुशील से उसी शुभ दिवस पर मैस से इसी भवन में आ जाने का अनुरोध भी कर दिया गया।

सुशील ने नन्दा साहब का अनुरोध सहर्ष मान लिया था, अतः उसके जन्म-दिवस पर नन्दा ने अपनी कार तथा अपने नौकर सुशील के पास भेज दिए, जिससे उसे अपना सामान आदि लाने में कोई असुविधा न हो।

एक अपूर्व उल्लास के साथ सुशील नन्दा साहब द्वारा समर्पित भवन में आ गया। सम्पूर्ण रूप से सजा-सजाया मकान उसे समर्पित किया गया था। मकान सुशील की आवश्यकताओं से कहीं बड़ा था। ऊपरी काम-काज के लिए सुशील के पास एक छोकरा पहले से ही था, लेकिन अब इतने बड़े मकान में आ जाने पर एक नौकर उसे और रखना पड़ा।

धीरे-धीरे इंजीनियर नन्दा पूर्णतः स्वस्थ हो गए और पूर्ववत् अपना सारा काम-काज करने लगे। अब वह कभी-कभी सुशील के कमरे में भी आकर बैठ जाया करते थे। सुशील उनके समुचित स्वागत-सत्कार सबका ध्यान रखता और इधर-उधर की बातचीत करके यथासम्भव उन्हें प्रसन्न रखता।

लीला और उसकी माता जी भी कभी-कभी सुशील के पास आकर बैठ जातीं। दोनों हिस्सों में केवल एक बन्द द्वार ही का व्यवधान था, जिसे आसानी से खोल लिया जाता और बीच का अन्तर जब चाहें दूर कर दिया जाता।

नन्दा साहब का मियादी बुखार तो कभी का टूट चुका था और अब वे स्वस्थ थे परन्तु उसके वृद्ध शरीर में इस बीमारी के उपरान्त जो शिथिलता व्याप्त हो गई थी, वह दूर नहीं हो रही थी। इस दशा में उनके डाक्टरों ने उन्हें किसी पहाड़ पर जा कर कुछ दिनों तक रहने की सम्मति दी। सुशील तो पहले से ही यह सम्मति दे चुका था।

एक दिन लीलावती के कमरे में बैठकर जब चारों व्यक्ति चाय पी रहे थे, तब डाक्टरों के उक्त परामर्श पर विचार-विमर्श किया गया और यह निश्चय हुआ कि लीलावती और सुशील की परीक्षाएँ हो जाने पर श्री नन्दा को मसूरी ले जाया जाए।

दोनों की परीक्षाएँ समाप्त होते ही ये लोग एक दिन मसूरी के लिए चल पड़े। रेल गाड़ी द्वारा देहरादून पहुँचकर एक दिन विश्राम कर यात्रा की थकावट दूर करने का निश्चय किया गया और ये लोग एक होटल में ठहर गए।

दूसरे दिन प्रातः एक कार की व्यवस्था की गई और लगभग दो घण्टे में ये लोग पहाड़ों की रानी कही जाने वाली मसूरी जा पहुँचे। सेवाय होटल में कुछ महीने रहने की व्यवस्था कर ली गई।

१२

उधर बर्दवान में डॉ० मोहन की कोठी में एक दिन रमा अपने हाथ में एक पत्र लिये हुए माँ के निकट पहुँच कर बोली—'यह लीजिए माता जी ! इतने दिनों के बाद भैय्या का पत्र आ ही गया। उन्होंने लिखा है कि उनकी अन्तिम परीक्षा समाप्त हो चुकी है। सभी प्रश्न पत्र सन्तोष जनक रहे। उत्तीर्ण होने की उन्हें पूरी-पूरी आशा है। आज कल भैय्या मसूरी में हैं। कुछ दिन वहीं ठहरने का विचार है। मसूरी-प्रवास के पश्चात् यहाँ आने की बात लिखी है। पत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि किसी धनी मानी रोगी के चिकित्सक बन कर वह मसूरी गए हैं। आप को और पिता जी को प्रणाम लिखा है।'

इसी बीच में डॉ० मोहन भी वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने भी बड़ी उत्सुकता से बेटे का पत्र पढ़ा। परीक्षा के प्रश्न-पत्र सन्तोष जनक होने और सुशील के उत्तीर्ण हो जाने की आशा जान कर वह फूले न समाए। क्यों न हो, उन के जीवन की एक बहुत बड़ी साध पूरी होने जो जा रही थी।

सहसा एक बारह-तेरह वर्ष का लड़का इसी बीच में वहाँ आ पहुँचा। उसे देखते ही रमा उसके निकट चली गई और उसे साथ लेकर बगीचे की ओर बढ़ गई। दोनों ही बगीचे के बीचोबीच जाकर फव्वारे के समीप जा बैठे और पानी में मुस्कराते कमलों का सौन्दर्य निहारते हुए अपनी आवश्यक बातें भी करते रहे। थोड़ी ही देर में वह लड़का बगीचे से चला गया,

किन्तु रमा को किसी पहेली से उलझा गया। अपने-आप में खोई-सी रमा वहीं बगीचे में टहलती रही।

धीरे-धीरे सूर्य्य अस्ताचल की ओर सरक गया और सन्ध्या का झुट फुटा हो गया; किन्तु रमा को इस सब का मानो कोई पता ही न था। वह अपने ही विचारों में पूर्ववत खोई-सी टहलती रही। अचानक एक सूखा नारियल एक वृक्ष से फव्वारे के पानी में खड़खड़ाता हुआ आ टपका और पानी के छींटों से रमा की साड़ी का बहुत-सा हिस्सा भीग गया। अब रमा जैसे स्वप्न से जाग पड़ी। साड़ी के एक पल्ले से अपने मुँह पर पड़े पानी के छींटों को पोंछ डाला और अपने कमरे की ओर पग बढ़ा दिए।

रात का भोजन कर-लेने के पश्चात् रमा चुपचाप घर से बाहर खसक गई। वह कहाँ गई और कब तक लौटेगी, इसका किसी को कोई पता नहीं चला। ...

दूसरे दिन प्रातःकाल जब चाय तैयार हो गई, तो डॉ० मोहन ने अपने रसोइए को रमा को बुला लाने के लिए उसके ऊपरी कमरे में भेजा; किन्तु रसोइए ने लौट कर कहा—'बाबू जी, बिटिया रानी अपने कमरे में नहीं है।'

क्या कहता है?' गहरे आश्चर्य के साथ डाक्टर मोहन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से रसोइए की ओर घूरते हुए कहा।

मैं ठीक कह रहा हूँ, सरकार!' रसोइए ने नम्रता के साथ कहा—'आप स्वयं जाकर देख लीजिए।'

डॉ० मोहन और उनकी पत्नी दोनों ही घबराए हुए ऊपर गए और रमा को उसके कमरे में न पाकर उन्होंने घर का कोना-कोना खोज डाला; परन्तु रमा का कोई पता न चला।

इसी छानबीन के सिलसिले में डॉ० मोहन को रमा की गोल मेज पर एक बिलौरी पेपर वेट से दबा हुआ लिफाफा दीख पड़ा। झपट कर उन्होंने वह लिफाफा उठा लिया, उसे खोल कर और वहीं पड़ी कुरसी पर बैठ कर उस में रक्खे हुए पत्र को पढ़ डाला। पत्र पढ़ कर डॉ० मोहन माथा थाम कर रह गए।

'आखिर बात क्या है ?' रमा की माँ ने पूछा।

'सुपुत्री क्या लिख कर छोड़ गई है, तुम भी सुन लो।' कह कर डॉ० मोहन ने रमा का पत्र पढ़ कर सुना दिया।

'पूजनीय माता जी, आपको और पिता जी को इस पत्र द्वारा मैं आज इतना ही सूचित कर देना चाहती हूँ कि मैं एक अनिश्चित काल तक अज्ञात वास करूँगी। आप लोग मेरे सम्बन्ध में किसी प्रकार की चिन्ता न कीजिए। मैंने और मेरे साथियों ने असाध्य दीखने वाले कार्य को साध्य बनाने के लिए जो पग उठाया है, अब उसे पीछे हटाना किसी प्रकार सम्भव नहीं। इसके लिए मैं आप दोनों के आशीर्वाद के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहती। सम्भवतः आप को यह पता नहीं कि जिस दिन हम लोगों ने यह प्रण किया था, उसी दिन हम सब ने अपने जीवन का मोह त्याग दिया था। इस में से प्रत्येक नर-नारी और बाल-वृद्ध ने प्रतिज्ञा-पत्र पर अपने-अपने रक्त से हस्ताक्षर किए थे। जब आग में कूद ही पड़े हैं, तब जलने से बचना सम्भव नहीं।

'आप के आशीर्वाद से मैं एम० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण कर चुकी हूँ। मैं जानती हूँ कि आप लोग मेरे विवाह की चिन्ता में रत हैं; परन्तु आप यह नहीं जानते कि मैं तो पहले ही मृत्यु देव को वर चुकी हूँ। शेष फिर कभी।

आप की बेटी,
'रमा'

पुत्री का यह पत्र सुनते ही माँ की ममता अपना बाँध तोड़ बैठी और अश्रुओं के ज्वार में बह कर मूर्च्छित हो गई। डाक्टर मोहन भी यह देखकर घबरा गए। सामने रक्खी हुई सुराही से एक गिलास में पानी लेकर पत्नी के मुँह पर छींटे मारने लगे और दूसरे हाथ से पंखा झलने लगे। थोड़ा देर बाद रमा की माँ की मूर्च्छा टूट गई। डॉ० मोहन ने इधर-उधर की बातों में उनका मन लगाने की चेष्टा की; परन्तु माँ की ममता आँखों की राह बराबर बहती रही।

दूसरे दिन डाक्टर मोहन को समाचार पत्रों द्वारा ज्ञात हुआ कि उनकी पुत्री रमा के साथ रमेश, लज्जा, भगत सिंह आदि सभी साथी भी किसी अज्ञात स्थान की ओर चले गए हैं। इन सभी के नाम गिरफतारी के वारन्ट जारी हो चुके हैं, कारण गवर्नर-हत्याकाण्ड में सरकार इन्हीं लोगों के दल का हाथ समझती है।

इन लोगों के सहसा लोप हो जाने से पुलिस विभाग खीझ उठा। उसने सारे प्रदेश की एक-एक इंच भूमि छान डाली किन्तु इन लोगों का पता लगाने में वह सर्वथा असमर्थ रही। उस दशा में पुलिस के अत्याचार सीमा को पार करते गए और सर्वत्र एक गहरा आतंक व्याप्त हो गया। दिन-रात पुलिस के गुप्तचर नगर-नगर और गली-गली घूमने लगे। जिस किसी नागरिक पर उन्हें तनिक भी सन्देह हो जाता, उसे तत्काल गिरफ्तार करके जेल में ठूँस दिया जाता। बूढ़े-बच्चे, युवक-युवतियाँ जो भी उनकी सन्देह दृष्टि का लक्ष्य बन जाता, उसे नाना प्रकार की असह्य यातनाएँ भोगनी पड़तीं।

सारे देश में आतंक और यंत्रणा की प्रयलंकर बाढ़ सी आ

गई ; जिसके भँवर-जाल में रमा और रमेश के माँ-बाप के साथ-साथ कितने ही भले नागरिक भी अचानक और अतर्कित रूप से डूबने-उतारने लगे। सभी नागरिकों को अपने प्राणों के लाले पड़ गए। कोई व्यक्ति यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि वह किस क्षण इस प्रलयंकर अत्याचार का शिकार बन जायगा।

१३

लगभग रात का डेढ़ बज चुका था। सारा संसार गहरी नींद में अचेत पड़ा था। सड़क पर गहरा सन्नाटा व्याप्त था। इसे भंग करते हुए चार व्यक्ति पता नहीं किस कार्य से और कहाँ बढ़े जा रहे थे। चारों धोतियाँ पहने थे और अपने-अपने कुर्त्ते उतार कर कन्धों पर लटकाए हुए थे। चारों साथी धीमे-धीमे स्वरों में बात चीत करते जा रहे थे। उनकी दृष्टि में सतर्कता थी और गति में किसी लक्ष्य बेध की लगन।

जिस सड़क पर ये चार साथी बढ़े जा रहे थे, उसी पर कुछ आगे चलकर बाएँ हाथ पर एक छोटा-सा तालाब था। तालाब के ठीक सामने किसी मारवाड़ी सेठ की एक विशाल हवेली थी। सड़क से तीन-चार सीढ़ियाँ चढ़ने पर लोहे का एक झिलझोर—खुलने-बन्द होने वाला दरवाजा था, जिसके भीतर एक हट्टा-कट्टा पहलवान-सा चौकीदार कन्धे पर बन्दूक रक्खे पहरा दे रहा था। सम्भवतः यहीं ये साथी रुकना चाहते थे; किन्तु पहरेदार को सजग-सचेत देखकर ज्यों ही ये लोग आगे की ओर बढ़े कि उस चौकीदार ने हुंकारते हुए पूछा—'कौन हो रे, तुम लोग? कहाँ से आ रहे हो और कहाँ जाओगे?'

चार साथियों में से एक ने उत्तर दिया—'का है रे भैय्या! हम उस मुहल्ले से ब्याह की दावत खाकर आ रहे हैं और इस ओर अपने-अपने घर जा रहे हैं।'

चौकीदार ने यह उत्तर सुना और पूर्ववत् टहलता रहा।

चारों साथी जब फाटक से आगे बढ़ गए, तब चौकीदार को लगा कि इतनी रात बीते ये लोग खाना खाकर तो खाक आ रहे होंगे ! कोई और ही बात होगी ।

यह विचार ज्योंही चौकीदार के मन में कौंधा तो दरवाज़ा खोलकर वह शीघ्रता पूर्वक बाहर आ गया और सड़क पर आगे जा चुके चारों पुरुषों के पीछे दबे पाँव जा लपका । निकट पहुँच-कर उसने सबसे पीछे चलने वाले पुरुष को अचानक दबोचकर अपनी बलिष्ठ बाँहों में जकड़ लिया ।

जिस गली में ये चारों पुरुष मुड़ चुके थे, उसमें काफी अन्धकार था । चौकीदार के अचानक आक्रमण से सहसा तीनों साथियों का ध्यान भी इसी ओर आकृष्ट हो गया और पलक मारते सारा रहस्य उनकी समझ में आ गया ।

दोनों ने एक-दूसरे को कसकर पकड़ रखा था और मुँह से कोई एक शब्द भी नहीं निकाल रहा था । दोनों ही इस प्रयत्न में थे कि बगल में लटकती पिस्तौल उनके हाथ में आ जाय । पर उनका यह मनोरथ पूरा नहीं हो रहा था । अन्धकार की सघनता में इन पिस्तौलधारी उलझने वाले दोनों व्यक्तियों पर झपटना और अपने साथी की सहायता करना भी शेष तीन साथियों के लिए एक पहेली से कम नहीं था । फिर आक्रमणकारी चौकीदार खासा पहलवान था और इन चारों साथियों से कहीं अधिक शक्तिशाली था । उसे बलपूर्वक वश में करने की चेष्टा असफल भी हो सकती थी और सम्भवतः अकल्याणकारी भी ।

इस कर्म संकट का अन्त शीघ्र ही पिस्तौल के एक धड़ाके से हो गया । वह भीमकाय आक्रमणकारी—चौकीदार—सहसा भरभराकर धराशायी हो गया । यह पिस्तौल शेष तीन साथियों

में से एक ने, गुत्थमगुत्थी करते हुए दोनों व्यक्तियों के निकट पहुँचकर और चौकीदार को अच्छी तरह पहचान कर ठीक उसकी पसलियों को निशाना बनाकर दाग दी थी।

एक साथी को सतर्क रहने का आदेश देकर अब तीनों साथी हवेली की ओर बढ़ गए। लोहे का वह विशाल फाटक खुला पड़ा था और सम्भवतः उस पहलवान चौकीदार के लौटने की प्रतीक्षा कर रहा था, जो अब तक यमपुरी का अतिथि बन चुका था।

तीनों साथी दबे पाँव फाटक के भीतर घुस गए। दूसरा चौकीदार हथेली पर चूना और तम्बाकू मिलाकर सुर्ती फाँकने की तैयारी कर रहा था कि इन तीनों ने अचानक उसे जा दबोचा और उसकी पगड़ी से उसके हाथ-पैर एक खम्भे से जकड़ दिए तथा उसके मुँह में भी कपड़ा ठूँस दिया। एक साथी अपनी पिस्तौल निकालकर उसके सामने खड़ा हो गया और शेष दो साथी हवेली के भीतरी भाग की ओर बढ़ गए। शीघ्रता में जो कुछ नकद रुपया इनके हाथ लग सका, उसे लेकर ये लोग अपने तीसरे साथी के साथ तीव्र गति से उसी स्थान पर आ गए, जहाँ हवेली का चौकीदार इन्हीं की पिस्तौल का निशाना बनकर ढेर हो चुका था।

चौथे साथी के पास पहुँचने पर इन्हें यह ज्ञात हुआ कि पहलवान पर जिस गोली का वार किया गया था, उसकी चोट इन के साथी की कलाई पर भी लग चुकी है और उससे रक्त बह रहा है। एक साथी ने अपनी धोती का एक सिरा फाड़कर उसकी कलाई पर बाँध दिया। चल सकने में उसे असमर्थ देख कर एक साथी ने उसे अपनी पीठ पर उठा लिया और शेष दो

साथियों के साथ अत्यन्त तीव्रता से नगर के बाहर की ओर चल पड़ा।

रात का अँधेरा, मार्ग की ऊबड़-खाबड़ भूमि, धान की फसलों से लदे खेत और जंगलों के हिंस्र जन्तुओं आदि की उपेक्षा करते हुए ये चारों साथी अज्ञात दिशा की ओर बढ़ते ही गए। प्रातःकाल पाँच बजते-बजते ये लोग कलकत्ते से लगभग बीस मील की दूरी पर अवस्थित एक अनजान ग्राम में जा पहुँचे।

इस अनजान ग्राम की बाहरी सीमा पर एक खेत में जो झोंपड़ी दिखलाई पड़ी, उसी की ओर ये लोग बढ़ गए। द्वार खटखटा कर इन्हों ने झोंपड़ी के भीतर सोने वाले को जगाने का प्रयत्न किया।

खटखटाहट सुनकर किसी ने भीतर से झोंपड़ी का द्वार खोल दिया और बाहर आकर इन आगन्तुकों की ओर एक जिज्ञासा के साथ वह देखने लगा।

'हम लोग कार्यवश कलकत्ते जा रहे हैं, भाई!' चार साथियों में से एक ने कहा—'लेकिन मार्ग में हमारे एक साथी की कलाई में कड़ी चोट आ गई है, इसीलिए हम आपकी झोंपड़ी निकट देखकर यहाँ आने पर विवश हो गए हैं। यदि कुछ देर यहाँ बैठ जाने की आप आज्ञा दे सकें, तो हम अपने साथी का उपचार कर लें।'

किसान ने सहर्ष रोगी को झोंपड़ी के भीतर ले जाने और उसका भली भाँति उपचार करने की अनुमति दे दी।

आहत साथी की कलाई का प्राथमिक उपचार करके, थोड़ा दिन चढ़ते-चढ़ते एक साथी ने उस किसान के हाथ पर पचास रुपये रखते हुए कहा—'देखिए, ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे

साथी को अच्छा होने में सात-आठ दिन लग जाएँगे। इस दशा में इसकी सेवा शुश्रूषा और दवा-दारू के लिए यह रुपए आप रख लें। हमारा काम इतना जरूरी है कि हम यहाँ रुक नहीं सकते। अच्छा हो जाने पर यह साथी हमारे पास अपने-आप पहुँच जाएगा।'

अपने साथी को सारी आवश्यक बातें समझाकर और गन्तव्य स्थान पर आ मिलने की बात कहकर तीनों साथी उस झोंपड़ी और ग्राम से आगे बढ़ गए।

गाँव के निकट ही एक छोटा-सा रेलवे स्टेशन था। वहाँ जाकर तीनों साथी रेल पर सवार हो गए और पश्चिम की ओर प्रस्थान किया। धीरे-धीरे रेल पर बैठे बैठे लगभग आठ घण्टे बीत गए। अब तक ये लोग कलकत्ते से कोई दो-ढाई सौ मील की दूरी पर थे।

रेल के जिस डिब्बे में ये तीनों साथी यात्रा कर रहे थे, उसमें बैठे यात्री नाना प्रकार के विषयों पर आपस में बातचीत कर रहे थे। सभी लोग अपनी अपनी हाँक रहे थे। किसी के विचार दूसरे से मेल नहीं खाते थे। पर ये तीनों चुपचाप एक-एक समाचार पत्र पढ़ने में व्यस्त रहे। कोई यात्री यदि इनसे आकर कोई बातचीत करने की चेष्टा भी करता, तो ये लोग नपे-तुले उत्तर देकर पुनः पत्र पढ़ने में लग जाते।

अचानक एक श्वेत खद्दरधारी व्यक्ति, जो सामने की बेंच पर बैठा था, उठकर इन तीनों साथियों के समीप आ बैठा। डिब्बे के प्रायः सभी यात्रियों से यह व्यक्ति कोई न कोई बात कर चुका था। इन साथियों से भी उसने अनेक प्रश्न किए और बातचीत का सिलसिला जोड़ना चाहा, किन्तु चतुराई से इन्होंने उसे भी टाल

देने की चेष्टा की। परन्तु श्वेत खद्दरधारी जब उत्तरोत्तर इन लोगों से प्रश्न-पर-प्रश्न करता रहा, तब इन्हें लगा कि यह व्यक्ति सम्भवतः उनका पता लेने की चेष्टा कर रहा है।

तीनों साथियों ने आपस में ही संकेतों द्वारा कुछ निश्चय किया और गाड़ी जब जंकशन पर जाकर रुकी, तो दो साथी खाना लेने की बात कहकर उस डिब्बे से उतर गए। चार-पाँच मिनट बीत जाने पर तीसरे साथी ने उस श्वेत खद्दरधारी से कहा—'भाई साहब, मेरे सामान का तनिक ध्यान रखिएगा। मैं देखूँ तो सही, मेरे साथी कहाँ अटक गए।' और बेंच के नीचे रक्खे हुए कुछ सामान की ओर संकेत कर वह भी उस डिब्बे से प्लेटफार्म पर उतर गया।

श्वेत खद्दरधारी व्यक्ति ने जब बेंच के नीचे दृष्टि फैंकी, तो वहाँ उसे कोई सामान न दिखलाई पड़ा। अब उसकी शंका एक दम बढ़ गई। क्यों न हो, आखिर वह सी०आई०डी० इन्सपेक्टर था न! उधर उन तीनों साथियों को लौटते न देख, वह भी अब उस डिब्बे में बैठा न रह सका और तत्काल प्लेटफार्म पर जाकर उन्हें खोजने लगा।

तीनों साथियों ने जब इस खद्दरधारी व्यक्ति को इस प्रकार अपने पीछे लगा देखा, तो उसकी दृष्टि बचाकर वे दूसरे प्लेटफार्म पर जा पहुंचे और पीछे की ओर छूट चुकी गाड़ी में लपक कर चढ़ गए।

सायंकाल होते-होते रमेश ने कहा—'देखो भगतसिंह, अब हम लोगों का साथ-साथ रहना खतरे से खाली नहीं दीखता। अच्छा यही होगा कि अब आप दोनों मुझे यहीं छोड़कर वापस चले जाओ और अपने उस आहत साथी का पता लगाओ कि

वह सही-सलामत कहाँ है। उसे साथ लेकर मुझ से बनारस में आकर मिलना। मैं यहीं उतर रहा हूँ।' और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए, जिस जंकशन से गाड़ी आगे प्रस्थान कर रही थी, उसी पर वह उतर गया।

दूसरे दर्जे के प्रतीक्षालय में जाकर वह स्नानागार में गया और अँगरेजी वेश-भूषा धारण कर, पश्चिम की ओर जानेवाली एक रेलगाड़ी पर पुनः सवार हो गया।

१४

मसूरी के शीतल और स्वास्थ्यवर्द्धक वातावरण में सुशील और लीला की सेवा-शुश्रूषा के फलस्वरूप श्री नन्दा का स्वास्थ्य बहुत ही शीघ्रता से सुधर गया। उनकी सारी कमज़ोरी दूर हो चुकी थी और अब वह प्रातः सायं नियमपूर्वक सबके साथ मीलों की सैर करने लगे थे।

एक दिन सूर्योदय से पहले ही नन्दा, उनकी पत्नी, सुशील और लीला—चारों सैर करते हुए जब कैमेल-बैक-स्ट्रीट की चढ़ाई चढ़ रहे थे, तब सुशील और लीला कुछ दूर आगे निकल गए और नन्दा साहब अपनी पत्नी के साथ कुछ पीछे रह गए।

सम्भवतः नन्दा साहब जान बूझकर ही कुछ पीछे रह गए थे और अपनी पत्नी से कुछ परामर्श करने की चिन्ता में थे।

सहसा श्री नन्दा ने अपनी पत्नी से कहा—'देखो जी, अब हमारी आयु काफी ढल चुकी है। लीला का विद्याध्ययन भी समाप्त ही समझो। अब तो केवल एक इच्छा शेष है कि हमारे जीते-जी लीला का विवाह हो जाए।

'सो तो है ही।' श्रीमती नन्दा कहने लगीं—'लड़की काफी सयानी हो चुकी है। विवाह तो उसका करना ही होगा। क्यों जी, यदि इस सुशील के साथ ही······।'

बीच में ही बात काटते हुए नन्दा कह उठे—'यदि ऐसा हो सकता, तो मैं अपने-आपको परम सौभाग्यशाली समझता। सुशील कैसा स्वस्थ, सच्चरित्र और सद्बुद्धि है। एक अच्छे कुल

का सपूत है वह ! जैसा उसका नाम है, वैसा ही गुण-सम्पन्न भी है। परन्तु एक बात है······।'

'वह क्या ?' श्रीमती नन्दा बीच में ही पूछ बैठीं।

'यह कि हमारी बिरादरी और समाज के लोग इस सम्बन्ध पर जाने क्या-क्या कहने लगें !'

हाँ जी, यही रोड़ा सबसे बड़ा है ; नहीं तो यह जोड़ी कितनी सुन्दर रहती !'

बातें करते-करते दोनों ने देखा सामने बहुत दूरी पर हिमालय की दो गगन-चुम्बी हिमाच्छादित चोटियाँ खड़ी हैं—इतनी दूर कि हिम और शिला खण्डों के अतिरिक्त उन पर अन्य कोई वस्तु नहीं दीख रही थी। उनके सम्मानार्थ मानों छोटे-छोटे अनेक शैल-शिखर आसपास खड़े थे। नीचे की तरफ भयानक गहरी खाई थी।

सड़क के एक किनारे पर सुशील और लीला खड़े-खड़े कुछ बातचीत कर रहे थे। पूर्व से अभी-अभी निकलने वाले सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ सड़क पर समानान्तर रेखाएँ बना रही थीं।

'देखोजी, कितना सुन्दर दृश्य है।' श्रीमती नन्दा कहने लगीं—'यदि लीला और सुशील विवाह-सूत्र में बँध सकते, तो कितना सुन्दर होता !।

'परन्तु एक बात तुम नहीं देख रही हो !' श्री नन्दा ने कहा—'सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ जिस प्रकार समानान्तर दीख रही हैं—कहीं भी जिनके एकाकार होने की सम्भावना नहीं, उसी तरह इन दोनों की परछाइयाँ साथ रहते हुए भी एक दूसरे से कितनी दूर हैं। इनके विचारों में भी, मैं देखता हूं, एक मतभेद बना रहता है।

सड़क के किनारे जिस एक पुल के जंगले के सहारे लीला और सुशील खड़े-खड़े बातचीत करने में आत्मविभोर थे, अब तक श्री नन्दा भी अपनी पत्नी के साथ वहीं पहुँच चुके थे। लीला और सुशील प्राकृतिक सौन्दर्य निहारते हुए अपनी बात-चीत में इतने तल्लीन थे कि उन्हें इनके पहुँच जाने का कोई आभास तक नहीं हुआ।

सुशील कह रहा था—'तुम्हारी दार्शनिकता तो मेरी समझ में आती नहीं, लीला! यदि इस पहाड़ की चोटी को खोदकर यह खाई पाट दी जाए और एक समतल—सपाट—भूमि में इसे परिणत कर दिया जाए, तो यहाँ प्रकृति का आखिर कौन-सा आकर्षण और सौन्दर्य रह जाएगा? फिर यह असम्भव नहीं है क्या? संसार की प्रत्येक वस्तु अपने-अपने स्थान पर ही सुन्दर प्रतीत होती है। ठीक इसी तरह धनवानों और निर्धनों की बात है। सबको समान कैसे बनाया जा सकता है? न तो सबकी बुद्धि एक-जैसी होती है, न वृत्ति, न रूप और न कला-कौशल। इस दशा में केवल आर्थिक स्तर सबका समान कर देने से ही तुम जन-समुदाय को कैसे समान रख सकोगी?'

'तो क्या आपकी यह सम्मति है,' लीला ने व्यग्रता के साथ उत्तर दिया—'कि निर्धनों का उत्थान ही न होने दिया जाय? दरिद्र को दरिद्र ही रहने दिया जाय, मानो जीवन और जगत् के सारे कष्ट भोगने के लिए ही वे इस धरती पर जन्मे हैं! दूसरी ओर धनवानों के पास अपनी आवश्यकताओं से अधिक इतना प्रचुर धन पड़ा रहे कि न तो वह उनके काम में आवे और न दूसरों के काम आ सके। क्या निर्धनों को चैन से जीवित रहने का भी अधिकार नहीं है?'

'यह मैंने कब कहा कि उन्हें जीवित रखने का अधिकार नहीं होना चाहिए?' सुशील ने अपनी बात कही—'कि एक बार नहीं, सौ बार उन्हें यह अधिकार है। पर हमें यह सोचना ही होगा कि निर्धनों की दरिद्रता कैसे मिटाई जा सकती है? इससे पहले यह भी विचार करना होगा कि यह दरिद्रता आई कहाँ से? वृक्ष की जड़ में ही पानी देने से लाभ होता है, न कि उसके पत्तों पर।'

'मेरे विचार से तो देश में मशीनों के प्रचलन से ही यह दरिद्रता बढ़ गई है। पहले हमारा देश इतना दरिद्र नहीं था। हमारे देश का एक-एक ग्राम पहले अपने आप में एक पूर्ण केन्द्र था—स्वतन्त्र था और धन-धान्य से परिपूर्ण था। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि ये मिलें और मशीनें ही अपने साथ दरिद्रता लेकर यहाँ आ पहुँची हैं। जिस काम को सौ आदमी करते थे उसे एक ही मशीन पूरा कर देती है। फल यह होता है कि ९९ आदमी बेकार हो जाते हैं और दरिद्रता के शिकार हो जाते हैं।'

'मैं स्वीकार करता हूँ कि मशीनों के प्रचलन से देश में दरिद्रता बढ़ती जा रही है।' सुशील ने कुछ गम्भीर होते हुए कहा—पर इसका यह अर्थ नहीं कि मशीनों को पूर्णतः बहिष्कार कर दिया जाय। कलों के सहारे ही संसार के अनेक देश वैज्ञानिक आविष्कार करके हमसे कितने आगे बढ़ चुके हैं। फिर हमारा देश क्यों न अग्रसर हो? प्रगति की इस दौड़ में पीछे रह जाना हमारे देश के लिए घातक होगा।

एक क्षण रुककर सुशील ने फिर कहा—'देखो लीला, हमारे देश में करोड़ों रुपयों की वस्तुएँ विदेश से आती हैं। क्या हम लोग स्वयं ऐसी वस्तुओं का उत्पादन नहीं कर सकते? क्या

हमें अपनी शिल्प-कला को पुनः उन्नत नहीं करना चाहिए ? बिना ऐसा किए हमारे राष्ट्र की यथार्थ उन्नति कभी नहीं हो सकती। मेरे विचार में हमारे देश में कोई भी नवीनता, कोई भी प्रगति तब तक सफल नहीं हो सकती, जब तक यहाँ के निवासियों में व्यक्तिगत स्वार्थों को ही पूरा करने की मनोवृत्ति का अस्तित्व रहेगा।

इसी बीच में श्री नन्दा के हाथ की छड़ी सहसा उनके हाथ से छूट कर नीचे जा गिरी, जिसके शब्द ने लीला और सुशील दोनों को मानो किसी स्वप्न से जगा दिया।

लीला ने पीछे घूमकर देखा और कहा—'माता जी, आप लोग बहुत ही धीरे-धीरे चलते हैं।'

'यह बात नहीं है, बेटी !' नन्दा साहब बोल उठे—'हम लोग तो बहुत देर से आकर यहाँ खड़े हैं और तुम दोनों का वाद-विवाद सुन रहे हैं। अब तक तुम किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके। चलो, अब हम लोग होटल लौट चलें। सूर्य्य सिर पर चढ़ा आ रहा है।

चारों होटल की तरफ लौट पड़े। मार्ग में श्री नन्दा ने कहा—'हमने तुम दोनों की बातें ध्यानपूर्वक सुनी हैं; लेकिन हमें तो सुशील का तर्क ही ठीक जँचता है।'

लीला ने तमतमाते हुए कहा—'आप तो सदा सुशील का ही पक्ष लिया करते हैं, पिता जी ! जाने क्यों इन्हीं का गुणगान आप किया करते हैं।'

'तुम्हारी यह धारणा भ्रान्त है, लीला !' नन्दा साहब ने कहा—'तुम दोनों के वाद-विवाद में मुझे जिसका तर्क उचित जान पड़ता है, मैं उसी को ठीक कह देता हूँ। यह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है कि मैं किसी का पक्ष लेकर कोई बात कहूँ।'

इसी तरह की बातचीत करते हुए जब ये लोग होटल में पहुँचे, तो तत्काल नाश्ता और चाय लेकर होटल के नौकर आ पहुँचे और एक मेज पर रख कर चले गए।

मार्ग के वाद-विवाद ने लीला के मुख पर ताला सा लगा दिया था। फलस्वरूप आज चाय पीते समय कमरे का वातावरण एक दम स्तब्ध रहा। सब चुपचाप अपनी-अपनी चाय पी रहे थे।

श्री नन्दा ने परिस्थिति की गम्भीरता को तत्काल समझ लिया और जानबूझ कर लीला को छेड़ते हुए कहा—'बेटी, चाय कुछ गहरी बन गई है। सुशील के प्याले में थोड़ा दूध और डाल दो।'

'पिता जी—यह गहरी ही चाय पीते हैं। अधिक दूध इन्हें पसन्द नहीं। पर आप कहते हैं, तो मैं कुछ दूध और डाले देती हूँ।' और वह सुशील के प्याले में दूध डालने लगी।

'बस-बस! कहकर सुशील ने बीच में ही लीला का हाथ पकड़कर उसे दूध डालने से रोक दिया।

इसके बाद भी वह सारा दिन गहरी गम्भीरता के बीच ही समाप्त हुआ।

१५

मसूरी के स्वस्थ वातावरण में इसी तरह दिन बीत रहे थे एक दिन नन्दा साहब के कमरे में सहसा एक पुलिस इन्सपेक्टर आ धमके। उन के हाथ में कागज-पत्रों का एक बड़ा-सा बण्डल था।

पुलिस इन्सपेक्टर नन्दा साहब के सामने पड़ी एक कुर्सी पर बैठ कर पूछने लगा—'क्या आप के साथ कोई सुशील कुमार जी भी रहते हैं, जिन्होंने इसी वर्ष लाहौर मेडिकल कालेज से अन्तिम परीक्षा दी है ?'

सुशील इस समय वहीं बैठा था। तत्काल वह बोल उठा—'जी मैं ही हूँ सुशील कुमार ! आप क्या जानना चाहते हैं ?'

पुलिस इन्सपेक्टर ने सुशील के घरबार, माता-पिता आदि के सम्बंध में अनेक प्रश्न किए और अन्त में पूछा—'आपकी बहिन रमा आजकल कहाँ है ? उसके नाम गिरफ्तारी का वारण्ट निकल चुका है। गवर्नर-हत्या-काण्ड के बाद इनका पूरा दल कहीं विलुप्त हो गया है। क्या आप अपनी बहिन का कुछ पता दे सकते हैं ?'

'देखिये साहब !' सुशील ने सहज स्वाभाविक ढंग से कहा—'मैं जब पिछली बार घर गया था, तभी उन लोगों की गतिविधि देखकर मुझे अच्छा नहीं लगा था। पर मैं उन लोगों को समझाने-बुझाने के अतिरिक्त और कर ही क्या सकता था ? परन्तु उन लोगों पर मेरे समझाने-बुझाने का कोई प्रभाव नहीं

पड़ा। तब से लेकर अब तक न तो मैं घर गया, न मुझे यह पता चला कि मेरी बहिन घर में है अथवा अपने दल के साथ कहीं अन्यत्र जा छिपी है। यह समाचार तो मैं आज आपके ही मुँह से सुन रहा हूँ। ऐसी दशा में भला, मैं क्या बतला सकता हूँ! हाँ, पिछली बार मेरे सामने ही मेरे घर की तलाशी भी पुलिस ने ली थी; लेकिन उसे कोई आपत्तिजनक वस्तु प्राप्त नहीं हो सकी थी। सच पूछिए, तो मुझे अपनी बहिन की इस गतिविधि में न तो कोई रुचि है, न मेरा उससे कोई सम्बंध है। रमा के सम्बंध में जितना कुछ मैं जानता हूँ, आपको बतला चुका। मेरे सम्बंध में आप मेरे मेडिकल कालेज के अधिकारियों और मेरे सहपाठियों से भी जितनी छानबीन करना चाहें, सहर्ष कर सकते हैं।'

'क्या आप आजकल अपने घर जाने का विचार कर रहे हैं?'

'अब तक तो कोई विचार नहीं था; पर आप से यह सुनकर कि मेरी बहिन घर से कहीं चली गई है, सम्भवतः मुझे शीघ्र ही जाना पड़े। कारण, मेरे माता-पिता दोनों वृद्ध हैं। उन्हें मेरे सहारे की आवश्यकता होगी। मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि जाकर उनकी सेवा करूँ।'

पुलिस इंस्पेक्टर सुशील की सारी बातें लिखता जा रहा था। जब सारी बातें वह लिख चुका, तो उसने अपना मुँह ऊपर उठाकर सुशील की ओर देखा। सुशील ने तत्काल जेब से अपना पैन निकाल कर कहा—'लाइए, कहाँ हस्ताक्षर कर दूँ?'

पुलिस-इंस्पेक्टर के निर्देशानुसार सुशील ने अपने वक्तव्य पर हस्ताक्षर कर दिए और अपने बाएँ हाथ के अँगूठे का निशान

भी बना दिया। इंस्पेक्टर ने अब श्री नन्दा की ओर देखते हुए कहा—'क्या इस पर आप अपनी साक्षी दे सकेंगे ?'

'अवश्य !' श्री नन्दा ने अपने हस्ताक्षर करते हुए कहा—'केवल साक्षी ही नहीं, आवश्यकता पड़ने पर इनके लिए कुछ भी करने को मैं प्रस्तुत हूँ।

'धन्यवाद !' कहकर पुलिस-इंस्पेक्टर चला गया।

सुशील ने श्री नन्दा की ओर देखते हुए कहा—'मेरा मन इस समाचार से बहुत अधीर हो उठा है। लगता है मेरा, कर्त्तव्य अब मुझे पुकार रहा है। आप आज्ञा दें तो मैं बर्दवान चला जाऊँ ?'

'ऐसी परिस्थितियों में तुम्हें अवश्य जाना चाहिए, सुशील !' श्री नन्दा ने कहा।

'मैं शीघ्र ही वहाँ से वापस आ जाऊँगा।' सुशील ने श्री नन्दा को आश्वासन देते हुए कहा।

लीला भी यहीं खड़ी-खड़ी सारी बातें सुन रही थी। उसने अपने पिता के कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा—'पिता जी, आप आज्ञा दें, तो मैं भी इनके साथ चली जाऊँ। इनका प्रान्त देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।'

'बेटा ! अपनी माता जी से पूछ लो। वह कह दें तो सहर्ष चली जाओ। मुझे कोई आपत्ति नहीं।'

लीला तत्काल दौड़कर माँ के पास जा पहुँची और उनके गले में अपनी बाँहें डालकर मीठी-मीठी बातें करके उनकी आज्ञा लेने में सफल हो गई।

अब सुशील के पास आकर लीला ने कहा—'क्यों-जी, यह तो बतलाओ, आपको मुझे अपने साथ ले चलने में कोई आपत्ति तो न होगी ?'

'मुझे भला, क्या आपत्ति हो सकती है, लीला ?' सुशील ने मुस्कराते हुए कहा—'तुम्हें अपनी पीठ पर लाद कर तो मुझे ले नहीं जाना है। जो माता-पिता मुझे खाना देंगे, वे तुम्हारी भी चिन्ता करेंगे। मेरे घर में तुम्हारे ठहरने के लिए भी पर्याप्त स्थान है। पर एक बात है !'

'वह क्या ?' अधीर होकर लीला बीच में ही टोक बैठी।

'यही कि वहाँ चलकर कहीं यहाँ की तरह रात-दिन मुझसे द्वन्द्व युद्ध न छेड़ बैठना।'

'सो तो शायद ही बन्द हो ! लीला ने तुनक कर कहा—'तर्क द्वारा मीमांसा को ही यदि तुम द्वन्द्व युद्ध कहते हो तो वह कैसे बन्द हो सकता है ?'

लीला और सुशील के जाने की तैयारी बात-की-बात में हो गई। चलते समय श्री नन्दा को भी परिहास सूझा। वह बोले—'देखो, तुम लोग भी कहीं भाग न जाना, कभी मुझे भी वारण्ट निकलवाने न पड़ें ?'

लीला और सुशील दोनों ही यह सुनकर हँस पड़े। दोनों की मुखाकृतियाँ मानो यह कह रही थीं कि वे दोनों अपने-अपने हृदयों को टटोल रहे थे।

बस द्वारा दोनों मसूरी से देहरादून आ गए और शाम को साढ़े सात बजे वाली ट्रेन की प्लेटफार्म पर जाकर प्रतीक्षा करने लगे।

१६

देहरादून स्टेशन पर सुशील के बहुत प्रयत्न करने पर भी दूसरे दर्जे की दो 'बर्थ' रिजर्व न हो सकीं। बड़ी कठिनाई से पहले दर्जे का एक छोटा-सा डिब्बा उन्हें मिल सका, जिसमें केवल दो बर्थ थीं—एक ऊपर और दूसरी नीचे। इन्हीं बर्थों पर दोनों ने अपने-अपने बिस्तर फैला दिए और सुखपूर्वक वे बैठ गए।

लीला ने हँसते हुए कहा—'आज यह अनियमित व्यय कैसे कर डाला! क्या सूझी तुम्हें?'

माँ-बाप की इकलौती लाड़-दुलार में पली बेटी को मैं थोड़े से पैसों के लिए कैसे कष्ट दे सकता हूँ? विश्वास करो लीला, मैं अकेला होता, तो एक लाल टिकट लेकर इण्टर क्लास में ही विराजमान दीखता।

'तो तुम यह कहना चाहते हो,' लीला ने तुनकते हुए कहा—'कि मैं इण्टर क्लास में यात्रा नहीं कर सकती?' और बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए ही उसने शीघ्रता पूर्वक अपना बैग उठाया और उसे कन्धे पर लटका कर गाड़ी से उतर गई और एक तीसरे वर्ग के डिब्बे में जा बैठी।

लीला की तुनक मिजाजी को सुशील खूब जानता था, अतः वह जान-बूझ कर चुप रह गया। वह देखना चाहता था कि लीला कितने गहरे पानी में है? गाड़ी चल पड़ी। सुशील दरवाजे का बोल्ट लगाए बिना ही नीचे वाली बर्थ पर सोने का बहाना करके लेट गया।

हरद्वार स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो लीला पुनः इसी डिब्बे में आगई। सुशील ने लीला को अपने डिब्बे में चढ़ते देख अपनी आँखें बन्द कर लीं और जोर-जोर से खुर्राटे लेने लगा।

लीला को भी चुहल सूझी। उसने टिकट-चैकर का अभिनय करते हुए कहा—'क्या आप कृपापूर्वक अपना टिकट दिखलाएँगे, साहब ?' और सुशील की बर्थ को पैन्सिल से खट-खटाने लगी।

सुशील ने आँखें बन्द किए ही उत्तर दिया—'एक प्रथम श्रेणी के यात्री को रात्री में इस प्रकार परेशान करने का आपको कोई अधिकार नहीं है, टिकट-चैकर साहब !'

'अभी केवल साढ़े आठ बजे हैं।' लीला ने कहा—'और मुझे आपका टिकट देखने का पूरा अधिकार है।'

'यह क्या प्रलाप है ?' सुशील ने कुछ कड़े स्वर में कहा और सहसा उछल कर वह खड़ा हो गया।

सुशील की इस चेष्टा से लीला चौंक उठी और कुछ कदम पीछे हट गई।

'इतने ही में चौंक गए, टिकट-चैकर साहब।' सुशील ने मुस्कराते हुए कहा—'लीजिए, मैं हूँ एक यात्री; पर ये रहे दो टिकट मेरे पास। यदि पँचिंग-मशीन आपके साथ न हो, तो कृपापूर्वक अपने दाँतों से ही इन्हें छेद दीजिए।

'नहीं, इसकी आवश्यकता नहीं। देख लिए आपके टिकट।' कहकर लीला अपनी बर्थ पर जा बैठी और बोली—तुमने तो यहाँ से ही सताना आरम्भ कर दिया, जी ! प्रतिदिन आठ बजे ही

खाना खा लेते थे; पर आज तो कोई पूछने वाला ही नहीं दीखता।'

'पूछता किससे? बर्थ से या दरवाजे से? अब तुम आ गई हो, तो अभी खाना मँगवाए देता हूँ।' और सुशील दरवाजे की ओर बढ़ा ही था कि प्लेटफार्म पर कोई जोरों से आवाज देता सुनाई पड़ा—'वैष्णव भोजन! हिन्दू भोजन!' और दूसरे ही क्षण एक बैरे ने खिड़की में से झाँकते हुए पूछा—'खाना लाऊँ साहब?'

'हाँ, दो थालियाँ फौरन ले आओ!' सुशील ने कहा। थोड़ी ही देर में भोजन आगया। सुशील और लीला—दोनों ही नीचे के बर्थ पर बैठ कर भोजन करने लगे।

खाते-खाते सुशील ने लीला को छेड़ दिया—'अब तुम सच्चे अर्थों में कम्युनिज्म (साम्यवाद) अपनाने लगी हो; क्योंकि आज पहली बार तुमने तीसरे दर्जे में देहरादून से हरद्वार तक यात्रा की है। अब तुम्हें तीसरे दर्जे की कठिनाइयों का प्रत्यक्ष अनुभव हो चुका होगा।'

'हाँ-हाँ, प्रत्यक्ष अनुभव आज मुझे हो गया तीसरे दर्जे के यात्रियों की कठिनाइयों का।' लीला ने कहा—'पर तुम व्यर्थ ही मुझे वाद-विवाद में घसीट रहे हो। कहीं उस दिन की मसूरी जैसी परीस्थिति सामने न आ जाय।'

'तुम्हारा कहना असत्य नहीं है, लीला!' सुशील ने लीला की आँखों में अपनी आँखें डालते हुए कहा—'पर इस प्रकार मुँह बन्द करके हम लोग कब तक बैठे रहेंगे? एक उपाय है कि हम दोनों एक-दूसरे की ओर पीठ करके बैठ जायें और तुम अपने सामने की दीवार को उत्तर देती जाओ और मैं अपने सामने की दीवार

से बात करता चलूँ। इससे कलह बढ़ने की सम्भावना बहुत कम हो जायगी।'

लीला ने कोई उत्तर देना ठीक न समझा। खाना समाप्त हो जाने पर लीला ने कहा—'भई, मुझे तो नींद आ रही है। इस बर्थ पर से यदि समाचार-पत्र आदि हटा लें, तो कृपा होगी।'

सुशील ने तत्काल अपने समाचार-पत्र और पुस्तकें उठा लीं और साथवाली कुर्सी पर जा बैठा। कुछ देर तक वह एक पुस्तक के पन्ने उलटता रहा, फिर दरवाजे की सिटकनी बन्द कर वह भी ऊपर वाली बर्थ पर जा लेटा।

प्रात: होते-होते लीला जाग उठी। स्नानागार में जाकर उसने हाथ-मुँह धोया और अपने कपड़े बदल कर फिर सीट पर आ बैठी।

सुशील अब तक सो रहा था। लीला ने खड़े होकर उसे धीरे से धक्का देकर जगाने का प्रयत्न किया; परन्तु 'हाँ-हूँ' कर के सुशील ने चादर ओढ़ ली और वह पुन: सो गया। यह देख लीला पुन: अपनी सीट पर आ बैठी और खिड़की में से चुपचाप बाल-सूर्य्य की छटा निहारने लगी।

कुछ देर के बाद जब गाड़ी हरदोई स्टेशन पर जाकर रुकी, तो उसने चाय के एक सैट के लिए आर्डर दे दिया। चाय आ जाने पर उसने फिर सुशील को जगाने की चेष्टा करते हुए कहा—'अब तो उठो, न! चाय आ चुकी है।'

सुशील उठ बैठा और ऊपरी बर्थ पर बैठे-बैठे ही बोला—'लाइए, जब आप इतना कह रहीं हैं, तो मुझे आप पर कृपा करके चाय पीनी ही पड़ेगी।'

लीला ने चाय का प्याला ऊपर बढ़ा दिया, जिसे सुशील ने सहर्ष ले लिया और पीने लग गया। लीला ने डबल रोटी और

मक्खन की तश्तरी भी सामने कर दी; किन्तु सुशील ने कह दिया—'नहीं, यह तो जागने की चाय है। अभी मैं कोई खाद्य पदार्थ न लूँगा।'

'समझ गई!' लीला ने कहा—'अभी तक श्रीमान् जी ने मुँह नहीं धोया, दाँत साफ नहीं किए।'

चाय का प्याला खाली करके सुशील भी बाथ-रूम में चला गया और हाथ-मुँह धो, कपड़े बदल कर सीट पर आ बैठा। अगले स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो दोनों ने प्रसन्नता पूर्वक नाश्ता किया।

इसी प्रकार सुशील और लीला की यात्रा समाप्त हो गई। बर्दवान स्टेशन पर गाड़ी पहुँची और ये दोनों उतर पड़े। ताँगा किया और घर जा पहुँचे। पर घर की स्थिति देखकर सुशील को जोर का धक्का लगा। ऐसा प्रतीत होता था, मानो बहुत दिनों से उस घर में कोई न रहता हो।

सुशील की माँ और पिता जी दोनों सुशील के आने की खबर पाते ही तत्काल बरामदे में आ पहुँचे। सुशील को देखते ही माता-पिता के हर्ष की सीमा न रही। लीला को सुशील के साथ देखते ही उन्हें अपनी पुत्री रमा का स्मरण हो आया। उनका मन भीतर ही भीतर कुछ भारी सा हो गया। फिर भी अपने-आपको सँभालते हुए सुशील की माँ ने कहा—'इन्हें तो मैंने पहले कभी नहीं देखा।' लीला की ओर संकेत करते हुए पूछा—'यह कौन हैं, बेटा?'

'जिस सज्जन के साथ मैं चिकित्सक बन कर मसूरी गया था, माँ!' सुशील ने कहा—'यह उन्हीं की इकलौती बेटी हैं। इस वर्ष इन्होंने बी. टी. की परीक्षा दी है। अपने माता-पिता

की आज्ञा लेकर यहाँ मेरे साथ इस प्रदेश की सैर करने आई हैं। इन्होंने जब पुलिस से यह सुना कि रमा आजकल घर से कहीं चली गई है, तब इन्होंने आप लोगों के उदास मन को बहलाने की आवश्यकता समझ कर यहाँ आ जाना ठीक समझा। इनका नाम लीला है।'

'अच्छा हुआ बेटी, तुम आ गईं।' सुशील की माँ ने स्नेह पूर्वक कहा—'उस कमरे में जाकर हाथ-मुँह धो डालो और कपड़े बदल लो। इसी बीच में जलपान की व्यवस्था करती हूँ।'

अब डाक्टर मोहन बोले—'सुशील! तुमने तो पत्रोत्तर न देने की शपथ ही ले रक्खी है!'

'आपने कालेज के पते पर ही पत्र भेजे होंगे, पिता जी!' सुशील ने नम्रतापूर्वक कहा—'इसीलिए वे मुझे नहीं मिले। कारण, कालेज बन्द है और मैं श्री नन्दा के साथ मसूरी में था। यद्यपि नन्दा साहब का स्वास्थ्य अभी ऐसा नहीं है कि मैं उन्हें छोड़ कर यहाँ आ सकता; परन्तु पुलिस जब अचानक मेरा पता लगाती हुई मेरे पास आ धमकी और मुझे यह ज्ञात हुआ कि रमा घर से कहीं विलुप्त हो गई है, तब मुझे अविलंब यहाँ आ जाना पड़ा।'

'अच्छा!' कुछ आश्चर्य के साथ डा० मोहन ने कहा—'तो तुम्हें पुलिस द्वारा ही उसके चले जाने का समाचार मिला, सुशील?'

'हाँ, पिताजी!'

'अच्छा, तुम भी जाकर हाथ-मुँह धो डालो और कपड़े बदल कर नाश्ता करो।'

१७

दूसरे दिन प्रातःकाल का जलपान कर लेने के बाद सुशील की माँ ने उसे अपने पास बुलाया और कहा—तुम लीला को अपने साथ तो ले आए हो ; परन्तु यह न सोचा कि हमारे और उनके खान-पान में कितना अन्तर है। जो भी हो, अब इतना ध्यान रखो कि उसे यहाँ किसी प्रकार का कष्ट न हो। उसकी रुचि के अनुसार ही खाना बनवाना होगा। तनिक पूछ लो न उससे, क्या रुचेगा उसे ?'

'माता जी, आप स्वयं लीला से पूछ लीजिए न !' सुशील ने कहा—'यह सरल स्वभाव की लड़की है। इस ओर उसका ध्यान ही नहीं जायगा। जो आप बनवा देंगी, वह सहर्ष खा लेगी। ठीक रमा-जैसी ही समझो इसे। कष्ट सहन कर लेने में दोनों एक-सी हैं। इन दोनों की विचार धाराओं में भले ही अन्तर हो; परन्तु दोनों का लक्ष्य एक ही है। समाज और देश-सेवा की लगन दोनों में है।'

इसी बीच में डाक्टर मोहन ने बाहर से सुशील को पुकारा और वह उठकर चला गया।

सुशील के जाने के कुछ ही समय बाद लीला भीतर के कमरे से निकलकर सुशील की माता जी के पास आकर तख्त पर बैठ गई। उसके पैरों में सादे चप्पल थे। शरीर पर पूरी बाहों का पंजाबी कुर्त्ता और सलवार थी। सिर पर मलमल की एक चुन्नी थी। वस्त्रों का रंग जोगिया और चुन्नी

श्वेत दूध जैसी थी। सुशील की माँ का मन इस ताल-मेल खाते हुए रंगों की प्रतिष्ठित; किन्तु साधारण-सी वेष-भूषा पर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उन्होंने कहा—'आओ बेटी! बैठो! रात में नींद तो अच्छी आई न?'

'जी हाँ!' लीला ने कहा—'मैं तो खूब सोई!

'अच्छा, यह बतलाओ कि आज खाने के लिए क्या बनवाया जाए? जो तुम्हारी रूचि हो, निःसंकोच बतला दो, बेटी!'

'जिस देश में आ गई हूँ, माँ उसी देश का भोजन करना चाहती हूँ मैं।' लीला ने कहा—'न केवल यहाँ का खाना खाकर मुझे सन्तोष होगा, परन्तु यहाँ का खाना तैयार करने की विधि भी सीख लेने की मेरी इच्छा है।'

यही बातें चल रही थीं कि सहसा सुशील भी वहाँ आ पहुँचा। माँ ने उससे कहा—'बेटा! तनिक बगीचे में चले जाओ और माली से कह दो कि एक छोटा-सा कटहल तोड़कर दे जाए और दूसरी शाक-भाजी भी ले आए'

'एक छोटे-से कटहल के लिए अब मैं माली को उधर बुलाने जाऊँ? मैं स्वयं कटहल तोड़कर ले आऊँगा। यह कहिए कि कटहल के अलावा और क्या लाना होगा? अच्छा, जो-कुछ मिल जायगा, लेता आऊँगा।' फिर लीला की ओर देखते हुए कहा—'चलो, वहाँ से एक डलिया ले लो; तुम्हें भी अपना बाग दिखला दूँ।'

लीला भी यही चाहती थी। वह उठकर डलिया ले आई और सुशील के साथ बाग की ओर चल पड़ी।

माँ ने कहा—'देखो, बाग में जाकर इधर-उधर का वाद-विवाद न करने लगना। मैं तुम्हारी प्रतीक्षा में बैठी रहूँगी।'

बगीचे में पहुँच कर वहाँ के आकाशचुम्बी वृक्ष देख कर लीला स्तंभित सी खड़ी रह गई। सहसा उसके मुख से निकल पड़ा—'ओह! इतने ऊँचे-ऊँचे पेड़! ये काहे के वृक्ष हैं?'

'नारियल के पेड़ हैं ये' सुशील ने कहा—तुमने पहले कभी न देखे होंगे। ठहरो, तुम्हें अभी नारियल चखाता हूँ।' और उसने सामने वाली दीवार पर लटकती हुई चमड़े की दो पेटियाँ उठाईं; एक कमर में और दूसरी पाँव में बाँध ली और एक दराँती भी पेटी में खोंस ली। फिर लीला से वहीं एक ओर बैठ जाने को कहा और वह एक पेड़ पर धीरे-धीरे चढ़ने लगा।

वृक्ष के ऊपर पहुँचकर सुशील ने कहा—'लीला, पेड़ से काफी दूर हट जाओ।' यह कह कर सुशील ने खद् से दराँती एक गुच्छे पर दे मारी। वह गुच्छा पत्तों में से खड़खड़ाहट के साथ नीचे आ गिरा और सारे नारियल इधर-उधर बिखर गए।

सुशील जब तक वृक्ष के नीचे उतरा, लीला ने सारे नारियल एकत्रित कर लिये थे।

सुशील ने दराँती से एक नारियल का ऊपरी सिरा काट कर लीला को देते हुए कहा—'लो पियो इनका पानी।'

लीला ने वह नारियल सुशील के हाथ से ले तो लिया; किन्तु वह चुपचाप खड़ी रही। उसे यह ज्ञात ही नहीं था कि नारियल का पानी कैसे पिया जाता है!

सुशील ने दूसरे नारियल का सिरा काटा और उसे अपने मुँह से लगाकर उसका पानी वह पीने लगा। अब लीला ने भी उसका अनुसरण किया।

पानी पीकर सुशील ने दोनों नारियल के दो-दो टुकड़े कर दिए और कहा—'देखो लीला, यह सफेद हिस्सा नारियल की गरी है। इसे भी खुरचकर खा लो।'

लीला ने गरी खाते हुए कहा—'यह मलाई-जैसी वस्तु तो बहुत ही स्वादिष्ट है—अपने रस से भी अधिक मीठी।'

दो-दो नारियल समाप्त कर दोनों आगे बढ़े। लीला प्रत्येक नए पेड़-पौदे के सम्बंध में प्रश्न करती और सुशील उसे समुचित उत्तर देते हुए उसकी जिज्ञासा का समाधान करता जाता।

एक छोटे-से वृक्ष को देखकर, जो नारियल के वृक्ष से बहुत-कुछ मिलता-जुलता-सा था, लीला ने कहा—'क्या नारियल का पेड़ इतना छोटा भी होता है?'

'धत् पगली!' सुशील ने कहा—'यह नारियल का नहीं, सुपारी का वृक्ष है।'

लगभग डेढ़ घण्टा इसी तरह बगीचे की सैर करते-करते जब बीत गया, तब कहीं सुशील को यह ध्यान आया कि माता जी शाक-भाजी की प्रतीक्षा में बैठी झल्ला रही होंगी। तभी सुशील ने कहा—'सच लीला' अब करारी फटकार पड़ेगी।' और तत्काल बगीचे में से उसने बैंगन, भिण्डी, तुरई, परवल आदि तोड़कर डलिया में रख दिए। फिर एक छोटा सा कटहल भी तोड़ लिया और कुछ फलियां तथा शाक भी तोड़ कर डलिया में भर दीं।

भरी डलिया लीला की ओर बढ़ाते हुए सुशील ने कहा—'लो, अब ले चलो।'

लीला ने प्रयत्न तो किया; किन्तु बोझा अधिक हो जाने के कारण वह उस डलिया को उठा न सकी। तब सुशील ने भी उसका साथ दिया और दोनों ने डलिया को उठाकर माता जी के सामने ले जाकर रख दिया।

'बड़ी जल्दी लौटे, बेटा!' माता जी ने कहा—'वहाँ

मच्छरों ने तो अच्छी सेवा की होगी दोनों की।' फिर एक क्षण रुककर कहा—'और इतनी ढेर-सी सब्जी का क्या होगा, भला?'

'माता जी!' सुशील ने कहा—'अब दो-तीन दिन तक मँगवाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी।'

इसी प्रकार कुछ दिन बर्दवान में बीत गए। एक दिन सुशील ने लीला को कलकत्ता घुमाने का विचार प्रकट किया और माता-पिता की आज्ञा लेकर चल पड़ा।

कलकत्ता महानगरी में पहुँच कर लीला अवाक्-सी रह गई। इतना विशाल नगर उसने कभी देखा ही नहीं था। कलकत्ता इतना बड़ा नगर होगा, इसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकी थी।

कुछ दिन कलकत्ते में ठहर कर सुशील ने लीला को वहाँ के सभी दर्शनीय स्थान दिखला दिए। एक दिन चिड़िया घर और बोटेनिकल गार्डन की भी सैर की गई। वहाँ के एक प्राचीन वट-वृक्ष को देखकर लीला आश्चर्य चकित रह गई। इस वट-वृक्ष की छाया में हजारों व्यक्ति एक साथ विश्राम कर सकते हैं।

कलकत्ते के विभिन्न कालेजों और बाजारों की झाँकी देख कर लीला को एक अपूर्व प्रसन्नता का अनुभव हुआ। सुशील ने उसे बतलाया कि लाहौर की जितनी स्थायी जन-संख्या है, उससे कहीं अधिक संख्या तो कलकत्ते में बाहर से दैनिक आने-जाने वालों की ही है।

लीला यह सब सुनती और अवाक् रह जाती। सबसे विचित्र बात जो लीला को प्रभावित कर सकी, यह थी कि, महिला कालेजों की छात्राएँ भी यहाँ एकदम सादी वेशभूषा में दिखलाई पड़ीं। शृंगार प्रियता मानो किसी भी छात्रा को छू नहीं गई थी।

एक दिन इसी तरह घूमते-फिरते एक समवयस्का तरुणी से लीला पूछ बैठी—'बहिन जी, क्या आप यहाँ पढ़ती हैं ?'

'नहीं बहिन, मैं तो नौकरी के लिए यहाँ इंटरव्यू' में आई थी।'

'क्या परिणाम निकला ?'

'नौकरी मिल गई है। पहली तारीख से काम करूँगी।'

एक गहरे संकोच से भर कर लीला उसकी शिक्षा आदि के सम्बंध में प्रश्न न कर सकी। वह तरुणी सम्भवतः लीला का मनोभाव समझ गई और उसने हाथ में दबे हुए कागज खोलकर लीला के सामने रख दिए। लीला ने देखा कि इस तरुणी ने संस्कृत और भूगोल में दोहरी एम. ए. कर रखी थी।

लीला चुपचाप खड़ी इस तरुणी को ओर देखने लगी। मानो अब कोई प्रश्न पूछने की आवश्यकता नहीं रह गई थी। तभी सुशील ने लीला से कहा—'चलो चलें' धूप काफी चढ़ती जा रही है।'

यह देखकर उस तरुणी ने कहा—'यदि आप लोगों को कोई आपत्ति न हो, तो चलिए, सामने वाले 'कैफे' में एक-एक प्याला चाय पी लीजिए। हमारा अधूरा-सा परिचय भी वहाँ पूरा हो जायगा।'

लीला और सुशील सहर्ष इस तरुणी के साथ 'कैफे' में चले गए। तीनों ने वहाँ एक-एक कप चाय पीकर पारस्परिक संक्षिप्त-सा परिचय प्राप्त किया और बाहर आकर अपने-अपने डेरे की ओर प्रस्थान किया।

मार्ग में चलते-चलते लीला बोली—'यह तरुणी कितनी विदुषी है, फिर भी इसकी वेशभूषा में भी कितनी सादगी है। इसके प्रत्येक शब्द से अपूर्व नम्रता टपकती है।'

'यह तो एक साधारण-सी बात है, लीला !' सुशील ने गंभीरता के साथ कहा—'जिस वृक्ष में फल लग जाते हैं, वह झुक ही जाता है, परन्तु फलहीन वृक्ष सीधा आकाश की ओर बढ़ता चला जाता है।'

'मुझे तो अब ऐसा लगता है,' लीला ने कहा—'कि अब मैं कुछ दिन इन्हीं लोगों के बीच में रहकर बिताऊँ और सम्भव हो तो इनसे कुछ शिक्षा ग्रहण करूँ।'

'अच्छी बात है, लीला !' सुशील ने कहा—'अभी बहुत समय है ऐसी बातों का निश्चय करने के लिए !'

———

१८

'भविष्यवक्ता से हाथ दिखला लो ; अपनी किस्मत आज़मा लो ; भाग्य पूछ लो'—कहते हुए, दोपहरी में एक ज्योतिषी, गली में घूमता हुआ एक ऐसे घर के सामने आकर खड़ा हो गया, जिसमें एक नया परिवार थोड़े ही दिनों से आकर रहने लगा था।

सफेद लम्बी दाढ़ी, बड़ी-बड़ी मूँछें, माथे पर लम्बा तिलक कलाई में लोहे का कड़ा, शरीर पर लम्बा-सा चोगा और सिर पर पगड़ी ! एक सफेद दोहरी लुँगी का तहमद, पाँवों में खड़ाऊँ, हाथों में कुछ पोथी-पत्र और एक शीशे में जड़े हुए कुछ प्रमुख तीर्थों के चित्र लिये हुए यह भविष्यवक्ता देखने में बड़ा महात्मा और योगी-सा प्रतीत होता था।

घर के दरवाजे पर पहुँचकर अभी यह 'हरिनारायण' कह भी नहीं पाया था कि भीतर से एक तरुणी बाहर आई और थोड़ा-सा आटा इस भविष्यवक्ता की झोली में डालने लगी। तभी यह भविष्यवक्ता बोल उठा—'अहा-हा-हा, माई ; तेरा भाग्य बड़ा सिकन्दर है। बड़ी होनहार है तू !' और सहसा उसने चारों ओर दृष्टि फेरकर देखा कि गली में सर्वत्र सन्नाटा व्याप्त था। कहीं कोई आता-जाता नहीं दीख रहा था। तत्काल उसने तरुणी का हाथ पकड़कर उसे अपने सामने बैठा लिया, मानो उसका हाथ देखकर वह उसके भाग्य की लिपि पढ़कर सुनाने की तैयारी कर रहा हो। तरुणी की हथेली की रेखाओं पर अपनी अँगुलियाँ

बचाते हुए वह कहने लगा—'रमा बहिन ! अब यहाँ भी हमारी खैर नहीं। यहाँ की पुलिस की आँखें हम पर पड़ चुकी हैं। शीघ्र ही हमें यहाँ से नौ-दो ग्यारह हो जाना चाहिए।'

रमा को लौटने में देर होती देख, लज्जा और रमेश भी बाहर आ गए। भगतसिंह को ज्योतिषी के वेश में देखकर वे भी अपने हाथ दिखलाने के बहाने इस बातचीत में भाग लेने लगे।

ये चारों अपनी योजना बनाने की चेष्टा कर ही रहे थे कि इसी बीच में एक सब-इंस्पेक्टर, एक हेड कान्सटेबल और तीन पुलिस सिपाहियों के साथ वहाँ आ टपका।

पुलिस को देखते ही भगतसिंह कहने लगा—'तेरा भाग्य बहुत चमत्कार है माई !······'

ज्योतिषी की बात पूरी भी न हो सकी कि सब-इंस्पेक्टर ने इन लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा—'यहाँ कोई रमेश नाम के सज्जन रहते हैं क्या ?'

यह सुनते ही रमेश आगे बढ़कर बोल उठा—'रमेश तो नहीं, मैं अवश्य यहाँ रहता हूँ। मेरा नाम महेश है—रमेश नहीं।'

सब-इंस्पेक्टर ने अपने कागज-पत्रों में से एक तार निकालते हुए कहा—'रमेश कुमार और उसके साथी फरार व्यक्ति हैं। कड़ी निगरानी रक्खें। जहाँ मिल जायें, तत्काल गिरफ्तार कर लें।' एक क्षण तार का आशय सुनाकर सब-इंस्पेक्टर रुका और पुनः बोला—'आज ही हमें आप लोगों के चित्र भी मिल चुके हैं, जो हूबहू आपसे मिलते हैं। आप यहाँ नाम बदलकर रह रहे हैं शायद। जो भी हो, मैं आपको गिरफतार करता हूँ।'

जो आपके जी में आवे, वही कीजिए !' रमेश ने कहा—'पुलिस के आगे हमें आपत्ति ही क्या हो सकती है ?'

इसी बीच में दोनों तरुणियाँ घर के भीतर चली गईं। यह देखते ही थानेदार हेड कान्सटेबल की ओर मुड़कर चिल्ला उठा—'देखो चौबेजी, ये लड़कियाँ कहीं जाने न पावें।'

अपने आला अफ़सर का हुक्म सुनते ही चौबेजी फौरन घर के भीतर चले गए। वह लज्जा की ओर लपके और उसका हाथ पकड़ना ही चाहते थे कि रमा ने कोने में पड़ा हुआ लोहे का एक सरिया उठाकर उसकी बाँह पर दे मारा। चोट करारी होने से वह सहसा चीख उठा और धरती पर लड़खड़ा कर गिर पड़ा।

सहसा चीख सुनकर सब-इंस्पेक्टर घबरा गया। रमेश को सिहाहियों के सपुर्द कर वह भी घर के भीतर दौड़ा गया। हेड-कान्सटेबिल को धराशायी देखते ही, क्रोध में आगबबूला होकर वह कुछ अपशब्दों का उच्चारण कर बैठा। उधर रमा तो पहले से ही क्रोधित हो, यह सब देख रही थी। अब ये कुत्सित शब्द सुनते ही वह अपने आपको नियंत्रित न रख सकी और लपक कर इंस्पेक्टर के गाल पर एक करारा चाँटा लगाते हुए बोल उठी—'चुप रह, शैतान !' और उसकी नेकटाई खींचते हुए बोली—'क्या तेरे घर में माँ-बहिनें नहीं हैं ?'

एक लड़की का करारा चाँटा खाकर और उसकी यह फटकार सुनते ही इंस्पेक्टर की नस-नाड़ी ढीली हो गई। बाईस वर्ष की अपनी नौकरी में ऐसी दुर्घटना का वह पहली बार सामना कर रहा था। काँपती आवाज़ में वह कहने लगा—'मैं··· तो··· ।'

रमा बीच में ही बोल उठी—'क्या मैं तो, मैं तो कर रहा है।' और लज्जा का हाथ अपने हाथ में लेकर वह भीतरी कमरे

में चली गई। जाते-जाते कहती गई—'हम लोगों को शायद चोर या डाकू समझ रखा है, तभी ऐसा व्यवहार कर रहे हो तुम लोग। गिरफ़तार ही करना है, तो सीधे तरीके से करो।' फिर एक क्षण रुककर उसने रोब के साथ कहा—'याद रक्खो, यदि यहाँ भीतरी कमरे में आने का दुस्साहस किया, तो तुम्हें अपने प्राणों से ही हाथ धोना पड़ेगा।'

भीतरी कमरे में पहुँचकर रमा और लज्जा ने तत्काल अपना वेश बदल डाला। गोद में छोटे बच्चे को सँभाला और पिछले भाग की खिड़की में से दूसरे मकान में होकर किले की दीवार से सटी हुई सड़क पर उतरकर गंगा के टिकोर-घाट पर वे जा पहुँची और एक नाव पर बैठकर गंगा-पार उतर गईं।

सब-इंस्पेक्टर ने काफी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद अपना सारा साहस बटोरा और भीतरी कमरे में झाँक-झाँक कर अपनी आत्म-रक्षा के लिए एक हाथ में अपनी पिस्तौल दृढ़ता से दबाकर कमरे में पग बढ़ा दिया।

इधर ज्योतिषी ने सिपाहियों को भी उनका हाथ देखने और भाग्य बतलाने में उलझा लिया और रमेश सिपाहियों की आँख बचाकर घर के चबूतरे से कूद कर भाग खड़ा हुआ। वह भी भागता हुआ गंगा-तट पर जा पहुँचा और पानी में डूबकी लगा कर नौ-दो ग्यारह हो गया।

सिपाहियों ने जब रमेश को भागते देखा, तो सिट्टी-पिट्टी भूल गए और ज़ोरों से चिल्ला उठे—'भाग गया। भाग गया!' और गली में दौड़ पड़े।

सिपाहियों का शोर सुनकर सब-इंस्पेक्टर भी बाहर भाग आया और सिपाहियों के पीछे दौड़ पड़ा। किन्तु उन्हें अपने

प्रयत्न में सफलता हाथ न लग सकी। इधर यह भाग-दौड़ देख कर भगतसिंह भी चम्पत हो गया।

कुछ देर में सब-इंस्पेक्टर अपने सिपाहियों के साथ पुनः लौटकर उस घर में आया, तो दरवाजे के निकट एक आले में कागज़ का एक टुकड़ा रक्खा देखा। उस ज्योतिषी को भी वहाँ से चम्पत देखकर वह समझ गया कि वह भी रमेश के ही दल का कोई सदस्य होगा और बनावटी वेश में ज्योतिषी का अभिनय कर रहा होगा। आले में रक्खे कागज को उठाकर देखा, तो उसमें लिखा था—"सरकार ने हमें गिरफतार करने या कराने वाले को पाँच हजार रुपये का पुरस्कार घोषित किया है। खेद है, हमें पाकर भी आप गिरफतार न कर सके। पर भविष्य में हमें गिरफतार करने का दुस्साहस न करें, अन्यथा......।"

पुलिस ने उस घर के आसपास रहने वालों से पूछताछ प्रारम्भ कर दी। उस मकान का मालिक साथ वाले मकान में ही रहता था। पुलिस के दबाव से विवश होकर उसने यह बयान दिया :

"आज से लगभग बीस दिन पहले पूर्व की ओर से आने वाली ट्रेन से वे लोग उतरे होंगे। एक ताँगे पर वे लोग इधर आये। ताँगेवाला मेरे पास आया और यह मकान उन लोगों को किराए पर दे देने का मुझ से अनुरोध करने लगा। किराया तय हो जाने पर मैंने मकान खोल दिया और वे लोग इसमें रहने लगे। परन्तु आज तक मैं यह नहीं जान सका कि वे लोग कौन थे, कहाँ के रहने वाले थे और क्या करते थे। वे लोग कई भाषाएँ जानते हैं।

"सबसे बड़ी विचित्र बात यह थी कि दोनों पति-पत्नी, उनका बच्चा और साथ वाली दूसरी स्त्री—सभी लोग

अलग-अलग कमरों में सोते थे। यह बात एक रात अचानक ही मैंने देखी थी, जब बच्चा एक कमरे में अलग पड़ा-पड़ा रो रहा था। इससे यह निश्चित प्रतीत होता है कि उन लोगों का पारस्परिक कोई घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था और वह शिशु भी उन की सन्तान नहीं था। दिन में दूसरों को दिखलाने के लिए ही वे पति-पत्नी का अभिनय करते थे और उस शिशु को अपना पुत्र बतलाते थे।

"इन बीस दिनों में हजारों नए-नए नर-नारियों के पैरों की धूल इस मकान में उड़-उड़कर पड़ी होगी। कभी कोई किसी वेश में आता और कभी कोई किसी भाषा में बोलता सुनाई पड़ता। ये तीनों प्राणी भी कभी जमकर यहाँ नहीं टिकते थे। दिन भर कहीं-न-कहीं घूमते ही रहते थे। हाँ, रात बीते सब लोग वापस आ जाते थे। कभी–कभी एकाध व्यक्ति रात में भी नहीं लौटता था।

"कल ही की तो बात है। मैंने उनके सम्बंध में अनेक प्रश्न किए; परन्तु उन्होंने किसी प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर नहीं दिया। कहने लगे—'एक-न-एक दिन पता लग जायगा, साहब! हम कहीं भागे थोड़े ही जा रहे हैं।' फिर मुझ से ही पूछ बैठे कि इस नगर का नाम चुनार कैसे पड़ गया? क्या चुनारगढ़ या चण्डाल-गढ़ से ही यह चुनार हो गया है? यहाँ का किला किसका बनवाया हुआ है? क्या विक्रमादित्य से पहले का कोई इतिहास नहीं मिलता इसके सम्बंध में? राजा भर्तृहरि के विवाह का मण्डप यहाँ कैसे आ गया? वारेन हैस्टिंग्ज ने इसे कैसे हस्तगत किया था? कौन–कौन–से देशी राजा इस किले में नजरबन्द रह चुके हैं? क्या यह कथा सत्य है कि किले के भीतर जो कुआँ है, उसका सम्बंध गंगा से है और उसमें नीचे उतरकर नौका

द्वारा गंगा में पहुँचा जा सकता है ? किस राजा या बादशाह ने शत्रुओं से घिर जाने अथवा परास्त हो जाने की विकट परिस्थितियों में अपनी रक्षा और पलायन करने की यह व्यवस्था की होगी ? क्या यह भी सच है कि सुरंगों द्वारा इस किले का सम्बंध इलाहाबाद, आगरा और दिल्ली के किलों से जुड़ा हुआ है ? इसी तरह के सैंकड़ों प्रश्न उन्होंने मुझ से किए, जिनका उत्तर देना मेरी बुद्धि की पहुँच से बाहर की बात थी।

"यह मकान मैंने तीस रु० मासिक किराए पर उन्हें दिया था। पाँच रुपए पेशगी के रूप में भी मुझे मिल चुके थे। पर आज तो वे आप लोगों के देखते ही देखते छू-मन्तर हो गए। मेरा तो सारा किराया ही मारा गया। बस, इससे अधिक मैं कुछ नहीं जानता।"

यह बयान लेकर पुलिस चली गई।

१६

कैफे से निकलकर सुशील और लीला बातें करते हुए अपने डेरे की ओर चल पड़े। मार्ग में लाल बाजार पड़ता था। जब ये दोनों थाना हैडक्वार्टर के सामने से गुजरे, तो एक सादी वेश-भूषा वाले व्यक्ति ने कुछ दूर तक उनका पीछा किया और सहसा उनके सामने आकर मार्ग रोकते हुए कहा—'महाशय! आपको जरा थाने में चलना होगा। शायद आपका बयान भी लिया जायगा। चलिए, मेरे साथ।'

थाने में जाने की बात सुनते ही दोनों के हृदय में कुछ घबराहट सी होने लगी; परन्तु इस घबराहट को छिपाते हुए सुशील ने कहा—'चलो भाई!'

थाने के एक कमरे में सी. आई. डी. के एक उच्च पदाधिकारी बैठे थे। उनके सामने ले जाकर इन दोनों को खड़ा कर दिया गया। दोनों ने उस पदाधिकारी को नमस्ते किया। इनके अभिवादन का कोई उत्तर न देकर पदाधिकारी ने रुखे से स्वर में एक ओर संकेत करते हुए कहा—'उधर बैठ जाओ'

कमरे में दीवार से सटी एक बेंच रक्खी हुई थी। उसी पर सुशील और लीला—दोनों जा बैठे।

तेज स्वर में पदाधिकारी ने पुकारा—'भोला!'

लीला और सुशील सहसा इस पुकार से चौंक उठे। उन्होंने देखा कि इस पुकार पर एक हट्टा-कट्टा नौजवान वहाँ आया और

एक एड़ी से दूसरी एड़ी बजाते हुए पदाधिकारी को सलाम करके खड़ा हो गया।

पदाधिकारी ने अश्लील शब्दों का प्रयोग करते हुए झुंझलाहट के साथ कहा—'मेज-कुर्सियाँ रखने का यही तरीका सीखा है तुमने?'

भोला सिपाही ने तत्काल कुर्सियों को ठीक करके रख दिया और पुनः सलाम करके वहाँ से चला गया।

पदाधिकारी अपनी कुर्सी से उठकर कमरे में ही इधर-उधर टहलने लगा। लगता था कि वह किसी गहरी विचारधारा पर तिर रहा है। उसकी आँखों में गहरी सुर्खी थी। उसका शरीर डील-डौल खासा भीमकाय और हृष्ट पुष्ट था। उसे देखते ही भय का संचार होने लगता था।

सहसा वह पदाधिकारी सुशील और लीला की ओर घूम कर बोला—'इधर आओ दोनों।'

सुशील और लीला दोनों जाकर उसकी कुर्सी के निकट खड़े हो गए। पदाधिकारी अपनी कुर्सी पर बैठ गया और फर्श पर एक दरी पर बैठे हुए मुंशी से कहा—'इन लोगों से हम जो कुछ पूछें और ये जो उतर दें, उसे ब्योरेवार लिखते जाओ' फिर सुशील से उसने कहा—तुम्हारा नाम और पता क्या है? तुम क्या करते हो? सारी बातें सच-सच बताओ।'

सुशील ने सभी बातों का व्यवस्थित उतर देते हुए अपने घर और लाहौर में अपनी पढ़ाई आदि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। उसने यह भी बतला दिया कि उसकी बहिन रमा क्रान्तिकारी आन्दोलन में सक्रिय भाग ले चुकी है और उसे घर के लोग किसी तरह समझा-बुझाकर नियंत्रित नहीं कर सके। अन्त में यह कह देने से भी वह नहीं चूका कि किस प्रकार मसूरी

में उसे पुलिस की पूछताछ से ही रमा के घर से भाग जाने की खबर मिली और अपने माता-पिता को धैर्य बँधाने के लिए ही उसे बर्दवान आ जाना पड़ा। लीला का परिचय भी उसे इसी सिलसिले में दे देना पड़ा।

सुशील के बयान की सत्यता के प्रमाण में अफसर ने लीला का भी बयान लेने का उससे आग्रह किया। लीला ने भी सुशील से प्रारंभिक परिचय होने से लेकर आज थाने में आने तक का सारा वृतान्त सुना दिया।

अफसर ने पूछा—'क्या कलकत्ते में कोई तुम लोगों को जानता है और तुम्हारी जमानत दे सकता है ?'

'जमानत कैसी ? क्या हम चोर-उचक्के हैं ?' लीला ने खीझकर कहा और अपने थैले में से तत्काल अपना परिचय-पत्र (आइडेण्टिटी कार्ड) निकालकर अफसर की मेज पर रख दिया, जिसमें लीला का चित्र भी लगा था।

अफसर ने लीला का चित्र ध्यान पूर्वक देखकर वह कार्ड उसे लौटा दिया और उसके बयान पर उसके हस्ताक्षर लेकर कहा—'तुम जा सकती हो।'

लीला जाकर बैंच पर बैठ गई।

अफसर ने सुशील की ओर घूमकर कहा—'तुम्हारे पास अपने बयान की सत्यता का कोई प्रमाण है ?'

'श्रीमान् ! मैंने जो कुछ भी कहा है, उसका एक-एक शब्द सत्य है और मैं स्वयं अपने बयान की सत्यता का प्रमाण हूँ।' सुशील ने गंभीर स्वर में कहा 'आप चाहें तो हमारे मेडीकल कालेज के प्रिंसीपल से तार द्वारा भी मेरे सम्बंध में आवश्यक जानकारी हासिल कर सकते हैं, कारण मेरे पास इस समय मेरा आइडेण्टिटी कार्ड नहीं है।'

तभी अचानक दरवाजे का पर्दा उठा और श्री सुरेन्द्रमोहन कुछ कागज़-पत्रों के साथ वहाँ आ पहुँचे और अफसर को सलाम कर एक दूसरी कुर्सी पर बैठ गए।

सहसा लज्जा के पिता को यहाँ देखकर सुशील के विस्मय की सीमा न रही। किन्तु उसने अपने विस्मय को दबाते हुए उन्हें अभिवादन किया।

यह देखते ही अफसर ने श्री सुरेन्द्रमोहन से पूछा—'क्या आप इन लोगों को जानते हैं?

'जी हाँ, बहुत अच्छी तरह। यदि आज लज्जा होती, तो······।'

'समझ गया!' अफसर ने कहा—'यह बात है···।' फिर सुशील की ओर घूमकर उसने कहा—'इधर आओ, ! यहाँ अपने बयान पर हस्ताक्षर कर दो।'

थाने में बैठे-बैठे कई घण्टे बीत चुके थे। लीला ने इसी बीच कहा—'एक गिलास पानी मिल सकेगा, साहिब?'

सुशील ने जाकर अपने बयान पर हस्ताक्षर कर दिए, तो अफसर ने कहा—'अब तुम दोनों जा सकते हो।' फिर एक क्षण रुककर मुंशी की ओर देखते हुए कहा—'देखो, इस तरुणी को प्यास लगी है। इसे पानी पिला दो। लीला और सुशील दोनों ही पानी पीने के बाद उस कमरे से बाहर चले गए।

२०

लाल बाज़ार, के थाने से छुटकारा पाकर लीला सुशील दोनों ने डेरे पर जाकर अपना सामान बाँधा और शाम की गाड़ी से ही दोनों बर्द्दवान आ पहुँचे।

एक दिन सुशील की माँ ने कहा—'देखो बेटा! तुम्हारी बहिन रमा तो हम लोगों को छोड़कर पता नहीं, कहा चली गई! तुम भी सदा बाहर रहते हो। ऐसी दशा में अब हम लोगों का मन यहाँ बर्द्दवान में बिल्कुल नहीं लगता। ऐसी इच्छा होती है कि हम लोग काशी चले जायँ और वहाँ गंगा-तट पर कोई छोटा सा मकान किराए पर लेकर कुछ दिन रहें।'

डाक्टर मोहन ने कहा—'सुशील, तुम जा ही रहे हो! रास्ते में बनारस में उतर कर हमारे लिए एक छोटे-से मकान का प्रबन्ध कर सको, तो हमें सूचित कर देना। मकान की व्यवस्था हो जाए, तो हम दोनों जल्दी ही यहाँ से चले जायँगे। इस कोठी आदि की देख भाल के लिए हमारा गुमाश्ता, माली और दरबान आदि हैं ही। ये सभी पुराने नौकर हैं और इन पर हमारा विश्वास भी है।'

'अच्छा, पिता जी!' सुशील ने कहा—'मैं बनारस में उतर कर आपके लिए एक मकान की व्यवस्था करके यथोचित सूचना भेजूँगा। इस सिलसिले में लीला भी बनारस देख लेगी।'

यह सब सुनकर लीला ने कहा—'पिता जी! प्रयत्न करने पर मकान मिल ही जायगा। यह कोई असंभव बात तो है नहीं।

मैं तो यही कहूँगी कि आप दोनों, हम लोगों के साथ ही चले चलिए।'

लीला के इस प्रस्ताव पर सुशील की माँ तैयार हो गई। डाक्टर मोहन ने अपने गुमाश्ते तथा अन्य नौकरों को बुलाकर अपने बनारस जाने की बात सुना दी और सजग, सचेत रहकर कोठी की देख भाल करते रहने की हिदायत देते हुए और अपनी यात्रा की तैयारी कर देने की आज्ञा दे दी।

एक नौकर और एक रसोइए को साथ लेकर दूसरे दिन सब लोग बर्दवान से चल पड़े और प्रातः काल होते-होते बनारस जा पहुँचे।

रेलवे स्टेशन से थोड़ी ही दूरी पर बनारस में एक बहुत बड़ी धर्मशाला है। खुले हवादार कमरे, साफ-सुथरा फर्श, नल-पाखाना आदि सभी की बढ़िया व्यवस्था है। नाम-मात्र के दैनिक किराए पर इस धर्मशाला में यात्रियों को कमरे सहज-सुलभ रहते हैं।

इसी धर्मशाला में डॉ० मोहन सब के साथ जा पहुँचे और ऊपर के खण्ड में एक फ्लैट उन्होंने अपने ठहरने के लिए ले लिया।

धर्मशाला में यात्रियों के आने-जाने का ताँता-सा लगा रहता है। कोई आ रहा है, तो कोई जा रहा है। जो वहाँ ठहरे हुए हैं, वे अपने-अपने कार्यों में लगे हुए हैं।

सन्ध्या समय डॉ० मोहन सबके साथ घूमने के लिए चल पड़े। दशाश्वमेध घाट पर बनारस में गंगा-तट पर बड़ी चहल-पहल रहती है। वहीं जाकर एक मिठाई की दुकान पर चारों ने जलपान किया। जब डॉ० मोहन हलवाई को जलपान का मूल्य देने लगे—तो उसने उन्हें पहचान लिया। वह बर्दवान का ही

निवासी था। कहने लगा—'अरे, डाक्टर साहब! आप यहाँ कब आये?'

डाक्टर मोहन ने ध्यानपूर्वक हलवाई को देखा, तो वह भी उसे पहचान कर बोले—'अरे, मोती! कहो भाई, कैसा चल रहा है तुम्हारा काम-धन्धा!'

'बहुत मजे में हूँ, सरकार!' मोती ने अपनी सफलता की कहानी सुनाते हुए कहा—'पाँच छः वर्ष से दुकान कर रहा हूँ। आपके आर्शीवाद से एक घर अपने रहने के लिए और दो किराए के लिए बनवा चुका हूँ। यह दुकान भी निजी है।'

'बहुत खूब!' डाक्टर मोहन ने प्रसन्नता के साथ कहा—'परदेस में आकर तुमने बहुत उन्नति कर ली है। मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई यह सब जानकर।'

इसी बीच में सुशील ने कहा—'पिता जी! मोती चाचा से ही कहिए न, हमें भी यहीं कहीं एकाध घर दिलवा दें।'

'क्या आप यहाँ कोई मकान खरीदना चाहते हैं, डॉक्टर साहिब?' मोती ने कहा—'यदि विचार हो, तो मेरा अपना बनवाया हुआ है एक छोटा-सा मकान है, जो ठीक गंगा-तट पर है और अभी-अभी बनकर तैयार हुआ है। उसे बनवाने में लगभग अट्ठाइस हजार रुपये खर्च हुए हैं। आप लेना चाहें, तो मैं बिना किसी लाभ के लागत मूल्य पर आपको दे दूँगा, डॉक्टर साहब!' यह कहते हुए मोती अपनी गद्दी से नीचे उतर आया और बोला—'चलिए, लगे हाथों उसे देख भी लीजिए। यहीं पास ही है।

गल्ले को बन्द कर मोती ने अपने एक नौकर को निर्देश किया कि वह दूकान का ध्यान रक्खे और अभी थोड़ी ही देर में वह लौट कर आ जायगा।

मोती के साथ डॉक्टर मोहन अपने परिवार के साथ गंगा के किनारे-किनारे चल पड़े। थोड़ी ही देर में ये लोग मोती के मकान के सामने जा पहुँचे। गंगा-तट पर निर्मित यह छोटा-सा मकान दुमंजिला था। भीतर एक छोटा-सा बगीचा भी लगाया जा रहा था। मकान में भीतर घुसकर इन्होंने देखा, पानी का नल, बिजली आदि से यह मकान सुसज्जित था। रहने-ठहरने की सभी सुविधाओं का ध्यान रक्खा गया था। मकान के ऊपरी बारजे पर जाकर इन लोगों ने देखा, सामने गंगा के उस पार एक विशाल दुर्ग गर्वोन्नत-सा खड़ा है ?'

लीला ने पूछा—'यह सामने दुर्ग-सा क्या है ?'

'रामनगर के राजा का दुर्ग है।' सुशील ने उत्तर दिया।

डॉक्टर मोहन को मकान पसन्द आ गया। मोती ने कहा—'आप इसे अभी ले लें, डॉक्टर साहब ! कल इसकी रजिस्ट्री भी करा दूँगा मैं।'

'भाई मकान तो अच्छा है।' डॉक्टर मोहन ने कहा—'हमें पसन्द भी है। पर ठीक-ठीक बताओ, कितना रुपया लोगे ?' फिर सुशील की तरफ मुड़कर बोले—'तुम जाकर धर्मशाला से अपना सारा सामान ले आओ।

'डाक्टर साहब ! लगभग २८,००० रुपया इसमें लग चुका है।' मोती ने कहा—'इससे अधिक मैं आपसे नहीं लेना चाहता।'

डाक्टर मोहन ने अपने नौकर को आवाज दी और कहा 'देखो, सब कमरे झाड़-पोंछकर साफ कर लो और रसोइए से कह दो, आज से हमारा खाना यहाँ बनेगा और हम लोग यहाँ रहेंगे।'

कुछ देर में सुशील कुलियों के साथ सामान लिये वहाँ आ पहुँचा। डाक्टर मोहन ने अपना बक्स खोलकर चैकबुक निकाली और तीस हजार का चैक काटकर मोती के हाथ पर रख दिया।

चैक पर अंकित धन राशी देखकर मोती ने कहा—'आप दो हजार अधिक क्यों दे रहे हैं, डाक्टर साहब ?'

'लगभग अट्ठाइस हजार का मतलब ही तीस हजार होता है, भैय्या ! जाओ, कल इसकी रजिस्ट्री अवश्य करा देना।'

अगले दिन से सुशील और लीला ने बनारस की गली-गली छान मारी। बनारस मुख्यतः गलियों का ही शहर है। इन लम्बी-लम्बी और चक्करदार गलियों को भूल भुलियाँ कहना ही ठीक होगा। इन गलियों में घूमने में लीला और सुशील को बड़ा आनन्द आया।

एक दिन सुशील ने अपने पिताजी से सारनाथ घूम आने की आज्ञा माँगी। डाक्टर मोहन ने आज्ञा देते हुए कहा—'वहाँ से लौटने में विलंब मत करना, बेटा ! सुनसान स्थान है वह। चोर-लुटेरों का भी भय रहता है—ऐसा सुना गया है।'

'नहीं' पिता जी !' सुशील ने कहा—'हम दोनों प्रातः की गाड़ी से जायेंगे और सन्ध्या की गाड़ी से लौट आयेंगे। आप हम लोगों की तनिक भी चिन्ता न कीजिएगा।'

दूसरे दिन प्रातः चार बजे सुशील और लीला ने सारनाथ की ओर प्रस्थान कर दिया। सूर्योदय होते-होते दोनों सारनाथ स्टेशन पर जा पहुँचे।

सारनाथ का ऐतिहासिक बौद्ध मन्दिर स्टेशन से दूर नहीं है। शीघ्र ही ये दोनों उस मन्दिर में जा पहुँचे। मन्दिर की

दीवारों पर भगवान् बुद्ध की जीवनी चित्रित देखकर लीला विस्मय-विमुग्ध हो गई। उसने अपने जीवन में पहली बार इतनी उन्नत और शिल्प-कला को प्रत्यक्ष झांकी देखी थी। मन्दिर की दीवारों की चित्रकारी उसने बहुत ही बारीकी से देखी और एक अपूर्व प्रसन्नता से वह भर उठी। बौद्ध कालीन भारत का स्वर्णिम युग उसकी आँखों के सामने मानो साकार हो उठा।

मन्दिर के बाहर आकर ये दोनों वहाँ का प्राचीन स्तूप भी देखने गए! वहाँ का जैन-मन्दिर भी उन्होंने देखा, जिसमें अनेक बालक संस्कृत का अध्ययन करने में तल्लीन दिखाई पड़े।

जैन-मन्दिर से बाहर आकर दोनों एक सघन वृक्ष की छाया में जा बैठे और विश्राम करने लगे। अपना-अपना फ्लास्क खोल कर दोनों ने चाय पी और बातें करते हुए अब म्यूजियम की ओर चल पड़े।

संग्रहालय की प्रत्येक वस्तु ध्यानपूर्वक देखकर ये लोग पुनः सारनाथ मन्दिर की ओर लौट पड़े और उसके निकटवर्ती मनोरम उद्यान की हरी-भरी घास के बीच पड़ी एक बैंच पर जा बैठे।

प्राकृतिक सौन्दर्य को दोनों चुपचाप देख रहे थे कि सहसा सामने से अँगरेजी वेशभूषा में एक युवक आता दिखलाई पड़ा, जिसके साथ एक युवती तथा एक महिला थी। महिला की गोद में एक बच्चा भी था।

दूर से किसी ने एक-दूसरे को नहीं पहचाना। निकट आते ही युवती ने सुशील को पहचान लिया। मन-ही-मन उसे कुछ घबराहट सी हुई, किन्तु शीघ्र ही उसने अपने आपको प्राकृतिस्थ कर लेने में सफलता प्राप्त करली। चारों ओर उसने सतर्क दृष्टि से देखकर धीमी वाणी में अपने साथी से कुछ कहा और इन दोनों के सामने पहुँचकर कहा—'भैय्या! तुम यहाँ?'

एक क्षण के लिये सुशील स्तम्भित-सा रह गया; किन्तु ध्यान पूर्वक इस महिला को देखा, तो वह तत्काल पहचान गया और बोल उठा—'अरे! तुम हो रमा?'

'हाँ, भैया! मैं रमा ही हूँ।' रमा ने प्रसन्न मुद्रा से कहा—'अच्छा हुआ कि आज अचानक ही तुम से भेंट हो गई। आज मैं तुम्हें सारी बातें बतला देना चाहती हूँ, परन्तु ...' एक क्षण के लिये रुक कर लीला की ओर संकेत करते हुए बोली—'यह महिला तुम्हारे साथ कौन है?'

'जिनकी चिकित्सा करने मैं मसूरी गया था, उन्हीं श्री नन्दा की यह पुत्री हैं। इनका नाम लीला है। इसी वर्ष इन्होंने बी. टी. की परीक्षा दी है। मसूरी में जब पुलिस द्वारा मुझे यह खबर मिली कि तुम घर से कहीं चली गई हो, तब मैं फौरन माता-पिता के पास चला आया। ये भी मेरे साथ माता-पिता को धैर्य बँधाने की कामना से मेरे साथ चली आईं। माता-पिता दोनों ही बर्दवान से हमारे साथ बनारस आये हुए हैं। कुछ ही दिन पहले एक मकान भी उन्होंने बनारस में ही खरीद लिया है। रामनगर दुर्ग के ठीक सामने वाले गंगा-तट पर दुमंजिला मकान है।'

'अच्छा, अब मेरा भी वृत्तांत सुन लो, भैय्या!' रमा ने कहा—'मुझे यह सब बतलाना तो नहीं चाहिये; किन्तु अपने भैय्या से छिपाने का छल मैं नहीं कर सकती। यह हैं मिस्टर ब्राऊन—तुम पहचान सकते हो इन्हें? वही हमारे पुराने साथी रमेश। यह बच्चा जो मेरी गोद में देख रहे हो, इसे मैं अपना पुत्र बतलाती हूँ सबको, और मैं रमेश की पत्नी का अभिनय कर रही हूँ। और यह दूसरी युवती हमारी आया है 'एडना'—अर्थात् श्रीमती लज्जावती।

अब सुशील और रमेश दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा और एक मुसकराहट नाच उठी उन दोनों के ओठों पर तभी रमा ने कहा—'भैय्या! तुम्हें जिस चपरासी ने म्यूज़ियम दिखलाया था, वह भगत सिंह जी हैं, जिन्हें तुमने उस दिन रमेश के घर भोजन करते समय देखा था'

'सचमुच वेप-भूषा बदलने में तुम लोगों ने अद्भुत कौशल का परिचय दिया है।' सुशील ने कहा—'तुम लोगों को देखकर सहसा पहचान लेना टेढ़ी खीर है।'

परिस्थितियाँ और आवश्यकताएँ सब कुछ सिखला देती हैं, भैय्या!' रमा ने मुस्कराते हुए कहा—'आज तुम हम लोगों को अँगरेज़ी वेश-भूषा में देख रहे हो; पर कल आवश्यकता पड़ जाय, तो मैं किसी मेहतरानी के वेश में भी दीख सकती हूँ।'

'पर इस प्रकार कितने दिनों तक यह अभिनय चल सकेगा?' सुशील ने प्रश्न किया।

लीला यह सब साश्चर्य देख-सुन रही थी। वह कोई स्वप्न देख रही है अथवा सत्य घटना, इसका निश्चय मानो वह स्वयं नहीं कर पा रही थी।

'जितने दिन चल जाए, भैय्या!' रमा ने कहा—'परन्तु माता जी और पिता जी को मेरे लिये तुम अधिक चिन्तित न होने देना, भैय्या! उन्हें तुम बतला देना कि चिन्ता की कोई बात नहीं है।'

इसी समय कुछ लोगों को इसी ओर आते देख, ये तीनों वहाँ से चल दिए। जाते-जाते साहिब और मेम ने एक-एक सिगरेट सुलगा लिया और लज्जा का यह स्वर सुनाई पड़ा—सावधान ऐसी बात कभी किसी और से न कह बैठना।'

लीला और सुशील दोनों आश्चर्य चकित-से मूर्तिवत बैठे रह गए। इस क्षणिक भेंट में रमेश और लज्जा से कोई बात भी यह सुशील न कर सका।

घड़ी पर दृष्टि पड़ते ही सुशील चौंक कर उठ खड़ा हुआ। लीला से उसने कहा—'चलो लीला, गाड़ी का समय हो चुका है। शीघ्र ही स्टेशन पहुँचना होगा। नहीं तो गाड़ी मिलना असम्भव है।'

दोनों लपकते-भागते स्टेशन की तरफ बढ़ गए और बड़ी कठिनाई से गाड़ी पर सवार हो सके। किसी तरह रात होने के पहले ही ये लोग बनारस में अपने नए घर पहुँच गए।

रात का भोजन करते समय सुशील ने अपने माता-पिता को बतलाया कि सारनाथ की यात्रा आज किस प्रकार सफल हो गई और अचानक ही रमा बहिन उसे मिल गई। रमा के साथ लज्जा और रमेश के रहने की बात भी सुशील ने कही। यह भी कहा कि समय अत्यन्त कम था और स्थान अरक्षित था, इसलिए विस्तार के साथ कोई बात नहीं की जा सकी, फिर भी रमा को यह बतला दिया गया है कि आजकल आप दोनों यहाँ बनारस में आ गए हैं और गंगा-तट पर इस नए मकान का पता भी उसे समझा दिया है। जल्दी-जल्दी में उनके भावी कार्यक्रम का पता नहीं चल सका।

डाक्टर मोहन और उनकी पत्नी अपनी बिछुड़ी हुई पुत्री का कुशल समाचार पाकर गद्‌गद हो उठे। नई-पुरानी अनेक स्मृतियाँ उनके मानस में उमड़ने लगीं और रमा की ही बातें ये लोग रात की उनींदी घड़ियों में पता नहीं, कब तक करते रहे और कब सो गए।

२१

इसी तरह कई दिन बीत गए। एक दिन लीला ने सुशील के पिता जी से कहा—'मसूरी से आये हमें काफी समय हो चुका है। हम जब यहाँ आये थे. पिता जी बीमारी से उठे ही थे। यदि आप आज्ञा दें, तो अब हम लौट जायँ और पिता जी की हालत स्वयं जाकर देख लें। आप मुझे अपनी ही बेटी समझें जब चाहें, मुझे बुला सकते हैं। आपका आदेश पाते ही मैं सेवा में आ पहुँचूँगी'।

'बेटी! तुम जितने दिन हमारे पास रहीं, हम लोग रमा की अनुपस्थिति सर्वथा भूले रहे। सुशील के पिता जी ने कहा—'यह तुम्हारा घर है। जब जी चाहें, तुम यहाँ निस्संकोच आ सकती हो। तुम अपने माता-पिता से हम लोगों का अभिवादन कहना। उनसे यह अनुरोध भी हमारी ओर से करना कि वे कभी यहाँ आने की कृपा करें। सम्भव हो, तो कभी अपने साथ ही उन्हें ले आना।'

यह बातें चल ही रही थीं कि एक हाथ में समाचार पत्र लिए हुए सुशील ने इस कमरे में प्रवेश किया और कहा—'देखिए, पिता जी! आज एक सरकारी घोषणा प्रकाशित हुई है कि गवर्नर हत्या काण्ड के षड्यन्त्रकारियों को गिरफ्तार करने वाले को पचास हजार रुपए का पुरस्कार प्रदान किया जायगा।'

सभी लोगों ने वह समाचार ध्यान पूर्वक पढ़ा। सभी के मुख-मण्डल पर गहरी चिन्ता की रेखाएँ स्पष्ट दीखने लगीं।

क्षणिक निस्तब्धता को भंग करते हुए लीला ने कहा—'रमा बहिन को जिस वेश में मैंने देखा था, उसमें देखकर कोई यह नहीं कह सकता कि वे अंग्रेज महिला न होकर एक भारतीय तरुणी है, उन्हें पहचान लेना सरल नहीं है।'

डाक्टर मोहन ने कहा—'लेकिन यह चालाकी सदा न चल सकेगी! किसी-न- किसी दिन ये लोग सरकार के पंजे में फंस ही जायँगे।'

सुशील के माता-पिता ने लीला और सुशील-दोनों को मसूरी लौट जाने की आज्ञा दे दी। दूसरे दिन प्रातः दस बजे की गाड़ी से चले जाने की व्यवस्था भी कर दी गई।

ठीक समय पर लीला और सुशील स्टेशन पर जा पहुँचे। देहरादून के लिए इएटर क्लास के दो टिकट उन्होंने खरीदे और गाड़ी आ जाने पर गाड़ी में जा बैठे। पर गाड़ी में इतनी भीड़ थी कि डिब्बे में उन्हें बैठने के लिए भी स्थान न मिल सका। विवश होकर दोनों अपने-अपने बक्सों पर बैठ गए। इस प्रकार बक्सों पर बैठे-बैठे इतनी लंबी-यात्रा करना सम्भव नहीं था। सुशील ने देखा कि अन्य यात्रियों के शीघ्र उतर जाने की भी कोई सम्भावना नहीं।

सुशील यह सब सोच-विचार कर ही रहा था कि सामने प्लेटफार्म पर एक टिकट-चेकर जाता दिखलाई पड़ा। सुशील तत्काल उछलकर डिब्बे से उतर पड़ा और टिकट-चेकर के पास जाकर बोला—'बाबू साहब! हम दो व्यक्ति देहरादून जा रहे हैं। डिब्बे में इतनी भीड़ है कि हम लोगों का कचूमर निकल जायगा। यदि सेकएड क्लास में आप दो यात्रियों के लिए स्थान दिला सकें, तो बड़ी कृपा होगी।' और उसने बिना किसी उत्तर

की प्रतीक्षा किए, टिकट-चैकर के हाथ में अपने दोनों टिकट तथा सौ रुपए का एक नोट रख दिया।

'आप दो मिनट यहीं रुकिए।' टिकट-चैकर ने कहा—'मैं तनिक देख तो लूँ कि कहीं आपको जगह दी जा सकती है या नहीं।' और वह आगे बढ़ गया।

कुछ ही मिनटों में टिकट-चैकर ने आकर सुशील से कहा—'एक पूरा डिब्बा, जो हावड़ा से यहाँ तक रिजर्व था, खाली हो रहा है। चलिए आप लोग मेरे साथ।'

टिकट-चैकर ने दो कुलियों को बुलाया। लीला और सुशील का सामान उठवाया और अपने साथ उन्हें ले चला। उसे खाली डिब्बे के पास इन्हें ले जाकर, उस पर लगी रिजर्वेशन की चिट उसने फाड़ डाली और इन दोनों के नाम की एक चिट तैयार कर उस पर लगा दी।

लीला और सुशील निश्चिन्त होकर उस डिब्बे में जा बैठे। उनका सामान यथास्थान रखकर कुली चले गए। टिकट-चैकर ने उनके टिकट बना दिए और रसीद काट दी। हिसाब लगाने पर चार रुपये सुशील को वापस करने थे। टिकट-चैकर के पास रुपये नहीं थे! इसलिए उसने कहा—'मैं टिकट घर से रुपये लाकर अभी आपको दिये जाता हूँ।' और वह चलने लगा।

तभी सुशील ने कहा—'आप इसकी चिन्ता न कीजिए। मैं आपका अत्यन्त आभारी हूँ। बहुत २ धन्यवाद!'

इसी बीच इंजन ने सीटी दी और गाड़ी धीरे धीरे चल पड़ी। टिकट-चैकर ने कृतज्ञता प्रकट करते हुए सुशील को अभिवादन किया और वह दूसरे डिब्बे में चढ़ गया।

इस डिब्बे में लीला और सुशील दो ही यात्री थे। इसलिए एकान्त पाकर लीला ने कहा—'रमा बहिन को देखकर मैं तो

चकित रह गई। कितनी साहसी हैं वह ! नारी होकर भी इतने महान् कार्य का—देश-सेवा का—गुरुतर भार उन्होंने अपने सिर पर ले रक्खा है। कहाँ वह और कहाँ मैं ? उनके समक्ष तो मैं अपने आपको अत्यन्त क्षुद्र पाती हूँ।' लीला अपनी बात धारा-वाहिक रूप में कहे चली जा रही थीं। गाड़ी छकछक-भकभक करती अपना पथ पार किए जा रही थी और सुशील का मन न जाने किन अज्ञात विचार धाराओं में डूब उतरा रहा था।

एक क्षण रुककर लीला फिर कहने लगी—'वह चित्र जो मैं सारनाथ के उस मनोरम उद्यान में देख चुकी हूँ, कितना सरस, कितना लुभावना और कितना आकर्षक था ? क्या वह चित्र फिर कभी साकार रूप में देखने को मिल सकेगा ? रमेश एक पति का अभिनय कर रहा था, रमा उसकी पत्नी का और लज्जा एक आज्ञाकारिणी आया का ! और वह बालक भी कैसा सुन्दर था ! उधर चपरासी के वेश में भगतसिंह को देखकर भला, कौन कह सकता है कि वह किसी उच्च कुल का एक रत्न है।'

सुशील सहसा अपनी सीट पर से उछल कर खड़ा हो गया और बोल उठा—'अब याद आया, लीला ! जब हम दोनों म्यूजियम से बाहर आने लगे थे, और तुमने एक चवन्नी उसके हाथ पर रख दी थी, तब चपरासी ने अभिवादन करके तनिक मुसकराते हुए कहा था—बहन, मुझे लड्डू बहुत रुचिकर हैं। उस समय मैंने उसके इन शब्दों पर कोई ध्यान नहीं दिया ; अब याद आया कि भगतसिंह ने यह कह कर मुझे पहचान लेने का ही संकेत किया था और उसने यह स्मृति दिखलाई थी कि मेरे साथ भोजन करते समय उसने लड्डू खाने में ही अपनी विशेष रूचि प्रदर्शित की थी।' और सुशील ने रमेश के घर की उस दावत की सारी कहानी लीला को विस्तार के साथ सुना दी।

गाड़ी जौनपुर स्टेशन पर जाकर खड़ी हो गई और एक

अँगरेज़ महिला एक छोटा-सा सूटकेस और फलों का एक टोकरा लिए हुए उसी डिब्बे में आ गई और नीचे की तीसरी सीट पर बैठ गई। कोई मिश्नरी महिला प्रतीत होती थी।

'भई, आज तो सुबह से खाना खाने का अवसर ही अब तक नहीं मिला। आओ, कुछ खा-पी लें।' कहते हुए लीला ने खाने पीने का सामान निकाला और सामने रखकर दोनों खाने बैठ गए।

अगले स्टेशन पर वह मिश्नरी महिला उतर गई।

खाते-खाते लीला ने पूछा—'तुम्हारे प्रान्त में क्या स्त्री-शिक्षा का बहुत प्रचलन है ?'

'नहीं, ऐसा अधिक तो नहीं है।' सुशील ने कहा—'हाँ, स्त्री-शिक्षा का प्रचलन यदि ज़ोरों से हो जाय, तो बहुत अच्छा हो। नारी सदा पुरुष पर निर्भर रहती है। दुर्भाग्यवश जब उसका यह सहारा टूट जाता है, तो उसे अपने कहे जाने वाले अन्य सम्बन्धियों का ही कितना अत्याचार सहन करना पड़ता। ऐसी स्थिति में यदि नारी विदुषी हो, तो वह कहीं-न-कहीं कोई काम-धन्धा करके अपना उदर-पोषण कर सकती है। दूसरे, उसकी शिक्षा का प्रभाव उसकी सन्तान पर भी पड़ता है। जब वह स्वयं शिक्षित होगी, तब अपनी सन्तान को भी वह शिक्षित बनाएगी और उसे शिष्टाचार भी सिखलाएगी।'

'सो तो ठीक है।' लीला ने कहा—'क्या आपके कहने का यह अर्थ है कि इससे उसके पति को कोई लाभ न होता होगा ?'

'होता क्यों नहीं ? पत्नी का शिक्षित होना पति के लिए तो सबसे बड़ा वरदान है, इसके अतिरिक्त शिक्षित नारी के विचारों से उसके पड़ोसी और देशवासी भी बहुत लाभान्वित होते हैं।'

'पर एक बात है।' लीला ने तर्क किया—'शिक्षित होते हुए

भी यदि पति-पत्नी की विचार धाराएँ एक-दूसरे के सर्वथा विपरीत हों, तब······?'

'तब क्या !' सुशील बीच में ही बोल उठा—'मतभेद रहने से घर की शान्ति तो भंग हो जाएगी। गृह-कलह भी केवल मत-भेद के कारण बढ़ता जायगा और एक दूसरे के मन में गहरा सन्देह भी धीरे-धीरे घर करने लगेगा।'

'परन्तु विवाह से पहले यह पता कैसे चले कि दोनों किन विचारों के हैं ?' लीला ने जिज्ञासा प्रकट की।

'थोड़ा-बहुत मतभेद तो विवाह हो जाने पर आमतौर पर तिरोहित हो जाता है, लीला !' सुशील ने कहा—'और दोनों के विचारों में बहुधा सामंजस्य होता देखा जाता है। शिक्षित होने से दोनों ही परिस्थितियों के अनुकूल अपने-आपको ढाल लेने में सफल हो जाते हैं। अपने देश में तो यही प्रथा है।'

'तो क्या आप यह कहना चाहते हैं कि जो महिलाएँ यूरोप से आकर यहाँ के पुरुषों के साथ विवाह कर लेती हैं, वे पढ़ी-लिखी होने के कारण देश, काल और पात्र के अनुसार अपने-आपको बदल लेती हैं ?'

अब तुम एक विशेष वर्ग की बात करने लगीं, लीला !' सुशील ने कहा—'मैं तो जन-साधारण की बात कर रहा हूँ। यों वे स्त्रियाँ भी अपनी-अपनी परिस्थितियों के अनुसार कुछ-न-कुछ अवश्य बदल जातीं हैं—यों कह लें कि उन्हें बदलना ही पड़ता है, यदि वे विवाह का ठीक-ठीक अर्थ समझती हों।'

'तो क्या जो नारियाँ विवाह-बंधन में जुड़ना स्वीकार कर लेती हैं, वे विवाह का अर्थ समझे बिना ही ऐसा कर डालती हैं ?'

'यह ठीक-ठीक कह सकना सम्भव नहीं।'

'अच्छा, तो ऐसे विवाह-सम्बन्धों पर आप के क्या विचार

हैं ? लीला ने प्रश्न किया—'और ऐसे सम्बन्धों से होने वाले लाभ-हानि पर आप कुछ प्रकाश डाल सकते हैं क्या ?'

'देखो लीला ! इस विषय पर न तो मैंने कोई गहन अध्ययन किया है, न मेरा कोई विशेष व्यक्तिगत अनुभव है। फिर भी मैं अपने विचार अवश्य प्रकट कर सकता हूँ।'

'वही सही ! मैं भी तो सुनूँ आपके विचार ?'

पुराने विचारों के माँ-बाप चाहते हैं कि उनके कुल, जाति, प्रदेश और उन्हीं की रुचि वाले वर-कन्या का विवाह होना चाहिए परन्तु मेरा विचार यह है कि विवाह-सम्बन्ध ऐसा होना चाहिए, जिसमें पति-पत्नी दोनों सुखी रह सकें—भले ही जाति, कुल आदि अनुकूल हों या प्रतिकूल। यों मेरी धारणा इस विषय पर प्रमाणिक नहीं मानी जा सकती। परन्तु मेरे विचार से जो पति-पत्नी सुखी हैं, वे लाभ में हैं और जहाँ रात-दिन मनोमालिन्य बना रहता है, वहाँ पति-पत्नी बहुत बड़े घाटे में रहते हैं। हमारे देश में तो विवाह-सम्बन्ध एक सौदेबाजी से कम नहीं रह गया है। वर-पक्ष भारी भरकम मूल्य चाहता है—किसी प्रदेश में खुले रूप में यह सौदा होता है, किसी में गुप्त रूप से। जो कन्या-पक्ष यह मूल्य नहीं दे सकता, उसकी कन्या को नाना प्रकार के कष्ट भोगने पड़ते हैं। यह दहेज-प्रथा बड़ी गर्हित है। मैं तो इसे बिल्कुल नहीं चाहता।'

सुशील अभी अपनी बात और आगे बढ़ाना चाहता था कि लीला बात काटते हुए बोल उठी—'किस झमेले में उलझ गए आप ? इन बातों का अन्त भी है कहीं ? लो, यह स्टेशन आ गया है। एक-एक कप चाय पीनी चाहिए।

२२

दो दिन की लम्बी यात्रा के पश्चात् लीला और सुशील देहरादून जा पहुँचे। वहाँ से एक टैक्सी लेकर लगभग साढ़े दस बजे प्रातः ये लोग मसूरी पहुँच गए। टैक्सी से सामान उतरवाकर यथा स्थान रख दिया गया। श्री नन्दा और उनकी श्रीमती जी लीला और सुशील को अपने पास वापस देखकर बहुत प्रसन्न हुए।

कुशल के अन्तर लीला की माँ ने कहा—'ये कई टोकरे और बोरियाँ कैसी? इनमें आखिर क्या भरकर ले आये हो, बेटा?'

'यह सामान मेरा नहीं है, माता जी!' सुशील ने तत्काल कह दिया—'लीला का है यह सब। वही बतलाएगी।'

लीला तुरन्त बोल उठी—'वहाँ मेरे बहुत ही मना करने पर भी पिता जी ने यह सब लदवा दिया और बोले कि अपने माता-पिता को हमारी ओर से बर्दवान आने का निमन्त्रण देना, बल्कि कभी अपने ही साथ उन्हें अवश्य ले आना और हमारी ओर से यह तुच्छ भेंट भी उन्हें दे देना। अब आप लोग इसे सँभालिए।'

'हम बूढ़ों के लिए इतना कष्ट करने की आवश्यकता ही क्या थी?' श्री नन्दा ने कहा—'वे लोग बहुत ही अधिक सौजन्य पूर्ण हैं।'

लीला लपककर सामान के पास जा पहुँची और बोली—'पिताजी ! तनिक यहाँ आकर देखिए तो सही। इन हाँडियों में उन्होंने वहाँ की विशेष मिठाइयाँ भेजी हैं।'

श्री नन्दा और उनकी पत्नी दोनों ही सामान के पास जा पहुँचे। सभी चीजें खोल-खोलकर देखी जाने लगीं। नारियल, केला, आम आदि फलों के अतिरिक्त भाँति-भाँति की शाक-भाजियाँ भी दूसरी बोरियों में से निकलीं। एक टोकरी में खजूर का बढ़िया गुड़ भी भेजा गया था।

शुभ समाचार तो बाद में सुनाऊँगा, पहले मुँह मीठा कर लूँ।' कहते हुए श्री नन्दा एक हाँडी में से कुछ निकालकर खाने लगे। फिर कमरे में से दो समाचार-पत्र उठा लाए। एक समाचार पत्र लीला के हाथ में और दूसरा सुशील के हाथ में थमाते हुए कहने लगे—'अश्चर्य की बात तो यह है कि तुम दोनों ही अपनी-अपनी परीक्षाओं में प्रथम उत्तीर्ण कैसे हुए।'

लीला और सुशील दोनों ने समाचार पत्र में देखा कि उनके चित्र छपे हैं, जिनके नीचे यह छापा गया है—'एम. बी. बी. एस. में सुशील और बी. टी. में लीला प्रान्त भर में प्रथम रहे।'

समाचार पत्र को मेज पर रखते हुए सुशील ने कहा—'यह सब आप लोगों के आशीर्वाद और शुभकामनाओं का फल है।'

दोपहर में भोजन करने के उपरान्त श्रीमती नन्दा ने कहा—'ये लोग इतना सारा सामान साथ में ले आये हैं। क्यों न अपने सभी इष्ट मित्रों को आमन्त्रित कर एक बढ़िया पार्टी दे दी जाए ?'

श्रीमती नन्दा का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लिया गया और दूसरे ही दिन एक प्रीतिभोज की व्यवस्था कर दी गई।

आमन्त्रित मित्रों का ताँता बँध गया। सभी ने लीला और सुशील की सफलता पर बधाइयाँ दीं और प्रीतिभोज की व्यवस्था पर श्री नन्दा की प्रशंसा की।

इसी तरह कुछ दिन और मसूरी में रहकर श्री नन्दा इन सब के साथ लाहौर वापस चले गए।

लाहौर में पहुँचकर सुशील ने अपने मकान के निचले भाग में अपना एक अस्पताल खोल दिया, जिसमें निर्धनों की चिकित्सा की निःशुल्क व्यवस्था की गई। आधुनिक चिकित्सा के यंत्रादि मँगवा कर यथास्थान व्यवस्थित कराने में लगभग एक महीने का समय लग गया। इस बीच में सभी आवश्यक औषधियाँ भी मँगवा ली गईं।

उधर लीला लाहौर के ही एक गर्ल्स हाई स्कूल की प्रधान-अध्यापिका नियुक्त हो गई। अध्ययन-कार्य में लीला की रुचि पहले से ही थी, अतः उसने उत्साह के साथ अपना कार्य उचित ढँग से सँभाल लिया। उसकी उत्तरोत्तर सफलता देखकर स्कूल के अधिकारियों को लीला की सेवाओं की प्राप्ति पर गर्व होने लगा।

सुशील का चिकित्सालय भी कुछ ही दिनों में चमक उठा। नगर भर में उसकी दक्षता की प्रशंसा होने लगी। अब सुशील इतना व्यस्त रहने लगा कि उसे भोजन और विश्राम करने का भी पर्याप्त समय न मिल पाता।

एक दिन संध्या समय एक दरिद्र स्त्री सुशील के दवाखाने में आई और रो-रोकर अपने रुग्ण पति की कथा के साथ-साथ अपनी व्यथा सुनाने लगी। उसने आग्रह किया कि सुशील जाकर उसके बीमार पति को एक बार देख लेने की दया करे।

सुशील उस दरिद्र स्त्री के साथ जाने के लिए ज्योंही तैयार

होने लगा कि दवाखाने के सामने सहसा एक चमचमाती हुई मोटर आकर खड़ी हो गई ! उसमें से एक सज्जन उतरे और डाक्टर सुशील के पास आकर बोले—'डाक्टर साहब ! मेरी पत्नी बहुत ही बीमार हो गई हैं। आप कृपापूर्वक चलकर उन्हें देख लीजिए। उनकी दशा अच्छी प्रतीत नहीं होती। मैं बहुत ही चिन्तित और परेशान हूँ।'

'आप थोड़ी देर प्रतीक्षा कीजिए।' डाक्टर सुशील ने कहा—'मैं एक अन्य रोगी को देखकर अभी आता हूँ। यहीं पास ही उसका घर है।'

'डाक्टर साहब, मेरी पत्नी की दशा बहुत ही शोचनीय है।' उक्त सज्जन कहने लगा—'बड़ी कृपा होगी, यदि आप पहले मेरे साथ चलें।'

सुशील ने गम्भीर वाणी में कहा—'देखिए, इस स्त्री का पति भी इसी तरह सख्त बीमार है। यह दरिद्र है और आप धनवान हैं। आप किसी दूसरे चिकित्सक को भी ले जा सकते हैं। मुझे इस समय क्षमा कीजिए।' और उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही तथा उसे विचारमग्न छोड़; सुशील उस दरिद्र स्त्री के साथ चल पड़ा।

सुशील अभी कुछ ही पग बढ़ा था कि कानों में कार का दरवाजा बन्द होने की आवाज़ आई। मोटर के स्टार्ट होने और चल पड़ने की आवाज भी सुशील को साफ-साफ सुनाई दी।

सुशील ने जाकर उस दरिद्र स्त्री के पति को ध्यान से देखा-भाला, उसे एक इंजेक्शन दिया और कहा—'घबराने की कोई बात नहीं है। शीघ्र ही अच्छा हो जायगा।'

सुशील अभी पथ्य सम्बन्धी हिदायतें दे ही रहा था कि

अचानक वहाँ लीला जा पहुँची। सुशील को वहाँ देखकर वह एकदम स्तम्भित रह गई। वह किसी असमँजस से डूबी-सी जहाँ की तहाँ खड़ी थी कि रोगी ने हाथ जोड़कर नमस्ते करते हुए कहा—'अठारह तारीख को सब ताँगेवालों ने हड़ताल करने का निश्चय किया है।'

रोगी के मुँह से सहसा यह बात सुनकर सुशील ने घूमकर जो पीछे की ओर देखा, तो लीला को वहाँ देख वह भी स्तब्ध सा रह गया। किन्तु उसने वहाँ एक शब्द भी कहना उचित न समझा।

लीला और सुशील दोनों ही उस घर से बाहर निकलकर साथ-साथ चलने लगे। इनके पीछे-पीछे वह दरिद्र स्त्री रुग्ण पति के लिए दवा लेने आ रही थी।

चलते-चलते सुशील ने कहा—'कपड़े की मिल के पश्चात् अब ताँगेवालों की हड़ताल कराने का संकल्प है क्या? अच्छा, यह तो बतलाओ लीला, तुम्हें अथवा तुम्हारे दल को इन सब से क्या सुख मिलता है या लाभ होता है?

'यह तुम्हारी समझ से परे है।' लीला ने सहसा उत्तर दिया।

इन दोनों को यह ध्यान ही नहीं रहा कि इनके पीछे वह दरिद्र स्त्री भी चली आ रही है।

'मेरी समझ से परे है या तुम में मुझे समझाने की क्षमता नहीं है, लीला?' सुशील ने कहा।

'आप चाहे जो समझ लें।'

'मैंने कई बार तुम्हें समझाने की चेष्टा की है, लीला! और आज फिर समझा देना चाहता हूँ कि इन बातों से हमारे

देश की हानि चाहे जितनी हो, लाभ रत्ती भर नहीं हो सकता। पहले अपने देश की ओर देखो, तब उस दूसरे देश की ओर, जिसे तुम लोगों ने अपना आदर्श बना रक्खा है। कितना अन्तर है दोनों की परिस्थितियों में, जलवायु में और लोगों की समझ-बूझ में।

यही बातें करते-करते ये लोग अपने मकान के सामने जा पहुँचे। लीला ऊपर चली गई और सुशील उस दरिद्र स्त्री के साथ अपने दवाखाने में चला गया।

सुशील ने तत्काल दवा तैयार कर उस स्त्री को दे दी, जिसे लेकर वह प्रसन्न मुद्रा से अपने घर की तरफ बढ़ गई।

२३

एक दिन एक सम्पन्न घराने के एक सज्जन अपने पुत्र को डाक्टर सुशील के पास चिकित्सा कराने के लिए लाये। सुशील ने भली भाँति रोगी की परीक्षा की और दो-तीन दिन उसे दवा भी दी। इसके पश्चात् सुशील ने रोगी के पिता से कह दिया कि मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह क्षय का शिकार होने जा रहा है।

डाक्टर सुशील की इस घोषणा से वह सज्जन अत्यन्त चिन्तित हो उठे। नगर भर के नामी डाक्टरों से उन्होंने अपने पुत्र की जाँच करवाई; किन्तु सभी डाक्टरों की सम्मतियाँ भिन्न-भिन्न थीं। अन्त में डाक्टरों के बोर्ड द्वारा उन्होंने अपने रोगी पुत्र की परीक्षा कराने का आयोजन किया। रोगी का एक्स-रे भी लिया गया। लड़का देखने में स्वस्थ जान पड़ता था; परन्तु डाक्टरों के बोर्ड ने उसके पेट में कीड़ों का रोग होने की घोषणा कर दी।

डाक्टरों के बोर्ड के परामर्श पर रोगी को दवा दी जाने लगी। उसके पाखाने में अगणित छोटे-छोटे कीड़े भी निकले। रोग दूर भागता प्रतीत हुआ। उसके माँ-बाप को कुछ ढाढ़स बँधा—डूबते को तिनके का सहारा मिल गया। परन्तु कुछ ही दिनों के अनन्तर वह लड़का फिर अस्वस्थ रहने लगा और उस का शरीर पुनः क्षीण होने लगा।

एक बार पुनः डाक्टरों के बोर्ड के समक्ष रोगी को उपस्थित किया गया। इस बोर्ड में डाक्टर सुशील को भी बुलाया गया और उसके कालेज से एक विशेषज्ञ प्रोफेसर भी उसमें सम्मिलित किए गए। सभी डाक्टरों ने रोगी को देख-भालकर अपनी-अपनी सम्मति प्रकट की। सुशील ने यहाँ भी उस रोगी को क्षय का रोगी घोषित किया और इस निश्चय पर पहुँचने के उसने कारण भी बतलाए। परन्तु विशेषज्ञ ने सुशील की सम्मति पर अपनी असहमति प्रकट करते हुए यही कहा कि रोगी को क्षय नहीं है। रोगी की चिकित्सा भी यही विशेषज्ञ प्रोफेसर करने लगे। अपनी सहायता के लिए उन्होंने डाक्टर सुशील को भी अपने साथ ले लिया।

विशेषज्ञ प्रोफेसर की चिकित्सा होने लगी; किन्तु कोई लाभ दृष्टिगत न हो सका। पर्याप्त समय के पश्चात् प्रोफेसर साहब भी मान गए कि रोगी को क्षय ही है।

अब रोगी के पिता ने अपनी सारी शक्तियाँ लगाकर कई डाक्टर, वैद्य और हकीमों की चिकित्सा कराई और किसी तरह रोग को दूर करने के सभी प्रयत्न किये। परन्तु रोग बढ़ता ही गया, ज्यों-ज्यों दवा की। बड़े-बड़े डाक्टरों और वैद्यों के परिश्रम और माँ-बाप के द्वारा असीम धन-व्यय करने पर भी वह रोगी स्वस्थ नहीं हो सका।

डाक्टर सुशील के पास इसी प्रकार के अनेक रोगी आते और उसका निर्णय शत-प्रतिशत ठीक निकलता। धीरे-धीरे नगर भर में डाक्टर सुशील की गणना एक निपुण और अनुभवी डाक्टर के रूप में होने लगी। नगर के घर-घर में उसकी प्रसिद्धि हो गई। नगर के बाहर से भी अनेक रोगी उसके पास चिकित्सा के लिए आने लगे।

अब डाक्टर सुशील को अपने कार्य में चौबीसों घण्टे व्यस्त रहना पड़ता। एक सहृदय चिकित्सक होने के कारण वह अपने प्रत्येक मरीज़ के मर्ज़ की बारीकी से परीक्षा करता और परिश्रम-पूर्वक उसको चिकित्सा का निदान करता। सुशील की सफलता का वास्तविक रहस्य यही था।

निर्धन रोगियों से डाक्टर सुशील न तो कभी दवा के दाम लिया करता और न अपनी फीस। जो रोगी बहुत ही मोहताज होते, उनके अनुपानादि के लिए भी वह कहीं-न-कहीं से व्यवस्था कर देता। बल्कि कभी-कभी तो अपनी जेब से ही उन्हें कुछ दे दिया करता। इस उदारता के कारण जनसाधारण की दृष्टि में डाक्टर सुशील बहुत ऊँचा उठ गया। जन-जन की सहानुभूति और सम्मान का वह पात्र बन गया। वह अपने कर्त्तव्य पथ पर इसी तरह निरन्तर बढ़ा जा रहा था और नगर की जनता उसकी पूजा करने लगी।

अचानक एक दिन सुबह सुशील ने ज्योंहि समाचार-पत्र हाथ में लिया, उसके पहले ही पृष्ठ के एक शीर्षक ने सहसा उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। वह एक विकट उलझन में पड़ गया। क्षण-भर के लिये वह गहरे असमंजस में पड़ गया। एक साँस में ही वह संवाद सुशील ने पढ़ डाला :—

"गवर्नर हत्याकाण्ड के षड्यन्त्रकारियों को आजीवन द्वीपान्तर वास की सजा।" और इस शीर्षक के नीचे पूरा संवाद इस प्रकार था : "रिंग-लीडर रमा देवी और उसके सहकारी रमेश कुमार, लज्जावती तथा भगतसिंह एवं अन्य साथी, जो फरार हो चुके थे, अन्ततः पकड़ लिए गए। उनपर अभियोग चलाया गया। और न्यायाधीश ने उन्हें दोषी ठहराते हुए चौदह वर्ष की सख्त सजा दी। इसके लिए उन्हें द्वीपान्तर वास के लिए भेजा जायगा।"

उक्त संवाद के साथ ही यह सूचना भी प्रकाशित हुई थी; "श्री सुरेन्द्र मोहन ने इन षड्यन्त्रकारियों को बन्दी कराने में बड़ी दक्षता का परिचय दिया। यहाँ तक कि अपने कर्त्तव्य के सामने उन्होंने अपने पुत्र रमेश और पुत्री लज्जावती के प्रति तनिक भी मोह नहीं किया और अपराधियों को दण्ड दिलाने में तनिक भी शिथिलता नहीं आने दी। सरकार की ओर से पुरस्कार के रूप में उन्हें रायबहादुर की उपाधि से विभूषित किया जाता है।"

सुशील ने कई बार इस संवाद को पढ़ डाला। उसकी व्यग्रता बढ़ती ही गई। वह कभी कुर्सी से उठकर टहलने लगता और कभी बैठकर उस संवाद को फिर पढ़ने लगता। उन्मन-सा होकर वह पता नहीं, क्या क्या सोच रहा था!

प्रातः काल छः बजे से नौ बजे तक सुशील की यही दशा रही। एक अप्रत्याशित-सी उधेड़बुन में ये तीन घण्टे यों ही बीत गए।। पता नहीं, अभी कितनी देर तक वह इसी उधेड़बुन में उलझा रहता, कि नीचे से कम्पाउण्डर ने आकर उसे सूचना दी—'दवाखाने में रोगियों की एक बड़ी संख्या आपकी प्रतीक्षा कर रही है, डाक्टर साहब!'

'चलो, मैं आ रहा हूँ।' बस, यही नपे-तुले-से शब्द सुशील कह सका।

इसी बीच उसके टेलीफोन की घण्टी टनटना उठी। लपककर उसने रिसीवर उठाया; किन्तु तत्काल यह कह कर रिसीवर यथास्थान रख दिया—'यह नंबर ठीक नहीं। क्षमा कीजिए।'

अब सुशील ने शीघ्रता पूर्वक अपने कपड़े बदले और रोगियों को देखने के लिए वह नीचे दवाखाने में जा पहुँचा।

आज न तो उसने नाश्ता किया, न पानी पिया। रोगियों को देख भाल कर उन्हें दवा दी और दवाखाने में ही वह इधर-उधर टहलता रहा। भोजन करने भी आज वह ऊपर नहीं गया। संध्या समय जब रोगियों का ताँता टूट गया, तब सुशील ऊपर गया और बिना कपड़े बदले ही वह अपने पलँग पर थका-हारा-सा जा लेटा। दोनों हाथों में सिर थामे जाने क्या सोचने लगा।

इसी बीच में लीला उस कमरे में आ पहुँची। उसने बिजली का स्विच दबाकर लट्टू जला दिया और देखा, कि सुशील अस्तव्यस्त-सा पलंग पर पड़ा हुआ है।

लीला ने सुशील के निकट पहुँचकर कहा—'क्या बात है ? आज तो तुमने खाना भी नहीं खाया ?'

सम्भवतः आज का समाचार पत्र तुमने नहीं देखा; सुशील ने दबे स्वर में कहा।

'नहीं तो।' लीला ने कहा—'इधर पाठशाला के कार्याधिक्य से दो-तीन दिन से मुझे समाचार पत्र देखने का भी अवकाश नहीं मिला।'

अच्छा !' कुछ आश्चर्य के साथ सुशील ने कहा और संकेत से समाचारपत्र दिखलाते हुए कहा—'वह रहा आज का समाचार-पत्र। उसे उठाकर देख लो।'

खड़े-खड़े ही लीला ने समाचारपत्र उठाकर पढ़ डाला। वह स्तब्ध-सी कुर्सी पर बैठ गई। उसके मुँह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह क्या कहे और किन शब्दों में सुशील को धैर्य बँधावे। इस समय उसकी आँख के सामने वही सारनाथ वाला चित्र घूम रहा था—अँगरेज़ी वेशभूषा में सुसज्जित रमा·····! और आज·····?

लीला चुपचाप कुर्सी से उठकर सुशील के निकट गई। उसके सिर पर अपना हाथ रक्खा, तो सहसा उसने कहा—'अरे ! तुम्हें तो ज्वर है !'

'नहीं लीला ! मैं ठीक हूँ।'

'सुबह से अब तक न तो कुछ खाया, न पिया। मैं ओवलटीन का प्याला बनाकर लाती हूँ।' और वह बिना किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए कमरे से चली गई।

लीला ने आज का दुःसंवाद अपने माता-पिता को भी सुना दिया और ओवलटीन का प्याला लेकर तत्काल वह सुशील के पास चली गई। सुशील ने ओवलटीन पी ली।

अब तक श्री नन्दा और उनकी पत्नी भी सुशील के कमरे में आ गये। सामने पड़ी कुर्सियों पर दोनों चुपचाप बैठ गए।

इन लोगों के कुछ कहने के पूर्व ही सुशील बोल उठा—'मैं तो पहले से ही जानता था कि एक-न-एक दिन ये लोग पकड़ लिए जायँगे। वे लोग स्वयं जानते थे कि आग के साथ खेलने में कभी-न-कभी जलना ही होगा। किन्तु आज यह संवाद पढ़ कर मुझे अपने माता-पिता की चिन्ता सता रही है। समझ में नहीं आता कि मैं इस वक्त क्या करूँ ? यहाँ देखूँ या वहाँ चला जाऊँ ? यहाँ रहना जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक वहाँ जाना भी है। तीन-चार रोगी यहाँ ऐसे हैं, जिन्हें छोड़कर चले जाना कर्त्तव्यच्युत होना है। इन रोगियों के जीवन मृत्यु की संधिवेला में क्या करूँ और क्या न करूँ; कुछ समझ में नहीं आ रहा है।'

श्रीमती नन्दा ने कहा—'बेटा ! जो होना था वह तो हो ही गया। अब तो मेरे विचार से तुम अपने माता पिता को यहीं ले आओ कुछ दिनों के लिए।'

'मैं भी यही विचार कर रहा हूँ।' सुशील ने कहा।

सहसा लीला बोल पड़ी—'व्यर्थ सोच-विचार में परेशान रहना ठीक नहीं। जो करना है, वह शीघ्र कर डालना ठीक होगा तुम शीघ्र तैयार हो जाओ। मैं भी तुम्हारे साथ इसी फ्रन्टियर मेल से चली चलती हूँ। परसों तक उन्हें साथ लेकर हम लौट पड़ेंगे और चौथे दिन यहाँ आ जायँगे।'

लीला ने तत्काल एक पत्र अपने स्कूल की द्वितीय अध्यापिका के नाम लिख कर वहीं छोड़ दिया और दोनों मोटर द्वारा शीघ्र ही स्टेशन पर जा पहुँचे।

स्टेशन पर जाकर लीला ने दो टिकट खरीदे और सुशील के साथ जाकर गाड़ी में बैठ गई। यथा समय गार्ड ने सीटी दी दी और गाड़ी चल पड़ी।

बनारस पहुँचकर तत्काल इन दोनों ने सारी तैयारी कर डाली। मकान में ताला लगाया और माता पिता तथा नौकरों को साथ लेकर लाहौर लौट आए।

नए वातावरण में आकर और नन्दा-परिवार की सहानुभूति तथा सद्व्यवहार ने सुशील के वृद्ध माता-पिता के दुःखी हृदयों पर मरहम का काम किया। डाक्टर मोहन और उनकी पत्नी को लाहौर में आकर सचमुच बड़ी शान्ति मिली।

आवश्यक यंत्रों और ओषधियों से सुसज्जित सुशील के चिकित्सालय में रोगियों का ताँता देखकर डॉ० मोहन का मन उलझा रहता। कठिन रोगों के सम्बंध में सुशील अपने पिता का परामर्श ले लिया करता। इससे डॉ० मोहन अपना दुःख भूले रहते और उनका मन बहलाव भी होता रहता। पुराने और अनुभवी पिता का परामर्श डॉ० सुशील के लिए सोने में सोहागे की उक्ति-चरित्रार्थ करने लगा।

२४

एक दिन लीला पाठशाला से लौटी, तो उसे जोरों का ज्वर था। उसका मुँह एकदम तमतमाया हुआ और लाल था। आते ही वह पलंग पर जाकर लेट गई। सभी लोग उसकी यह दशा देखकर चिन्तित हो उठे। थर्मामीटर लगाकर देखा, तो उसका बुखार 104 डिग्री निकला।

लीला के मस्तक पर बर्फ रक्खा गया। उचित औषधि उसे दी गई; किन्तु ज्वर कम न हुआ। दूसरे दिन चेचक के लक्षण दीखने लगे।

पास-पड़ोस वाले लीला को देखने आने लगे। सभी लोग अपने-अपने ढंग पर सहानुभूति प्रकट करके चले जाते। परन्तु इस सहानुभूति के साथ श्री नन्दा के परिवार की चिन्ता घटने की अपेक्षा बढ़ती ही गई। किसी ने कहा, माता की बीमारी में कोई दवा-दारू नहीं देनी चाहिए। किसी ने कहा, इस रोग का कोई उपचार ही नहीं होता। किसी ने होमियोपैथिक इलाज करने की सलाह दी, तो किसी ने हकीम या वैद्य को दिखलाने का परामर्श दिया। जितने मुँह उतनी बातें! श्री नन्दा ने लाहौर के सभी बड़े-बड़े डाक्टरों को बुलाया और लीला को दिखलाया; किन्तु किसी ने कोई भरोसे की बात नहीं कही।

चेचक का प्रकोप लीला के शरीर पर उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया। एक दिन सन्ध्या समय श्रीमती जी के साथ श्री नन्दा डाक्टर मोहन से परामर्श करने के लिए उनके पास आ बैठे।

सुशील भी अपने पिता के पास ही बैठा था। सबके मुख पर गहरी चिन्ता की रेखायें स्पष्ट झलक रहीं थीं।

श्री नन्दा ने चिन्ता के साथ कहा—'अब क्या करना चाहिए, डाक्टर साहब ?'

'भाई, इस प्रकार घबराने से तो काम बनेगा नहीं।' डाक्टर मोहन ने गम्भीर स्वर में कहा—'विधि विधान पर ही निर्भर रहना ठीक होगा। डाक्टरी उपचार में तो इसका कोई इलाज है नहीं। मुझे डाक्टरी करते चालीस वर्ष हो रहे हैं; ऐसी भयंकर चेचक मैंने कभी नहीं देखी।'

अन्य बड़े-बड़े डाक्टर का भी यही कहना था। रोगी के पास किसी को आने-जाने की अनुमति नहीं थी।

रोगग्रस्त लीला को घर के तीसरे खण्ड की एक हवादार बरसाती में लिटा दिया गया। पहले यह बरसाती लीला का अध्ययन-कक्ष थी। बेचारी लीला अकेली इस बरसाती में पड़ी रहती। डाक्टरों के परामर्श के अनुसार उसके पास किसी को फटकने न दिया जाता।

डाक्टरों ने जब रोगी के बचने में स्पष्ट सन्देह की घोषणा कर दी, तब सुशील के हृदय पर मानो वज्रपात हुआ। लीला के माता-पिता कई दिनों से प्रायः निराहार ही रहते और रात-दिन लीला की चिन्ता में घुलते रहते।

सुशील टहलते-टहलते जब श्री नन्दा के सामने पहुँचा, तो उनका सारा धैर्य बाँध तोड़ बैठा। सुशील के कन्धे पर अपना एक हाथ धरकर श्री नन्दा ने सिसकते हुए कहा—'क्या तुम लीला को बचा न सकोगे सुशील ? यह मेरी इकलौती बेटी है। मेरे पास इतना धन-वैभव है, फिर भी मैं आज कितना विवश हूँ,

बेटा ! ओफ ! आज मैं अपनी इकलौती बेटी को बचाने के लिए कुछ भी तो नहीं कर सकता।' इतना कहते-कहते उनकी सिसकियाँ और अधिक बढ़ गईं।

सुशील अजीब उलझन में पड़ गया था। उसके माता-पिता ने लीला के पास जाने से उसे मना कर रक्खा था। इधर लीला के माता-पिता की यह करुण स्थिति देखकर सुशील के मन ने कहा—मैंने यह जो डाक्टरी पढ़ी है; वह दूसरों की सेवा करने और प्राण-रक्षा करने के लिए ही पढ़ी है न! फिर, लीला के पास न जाकर मैं अपने कर्त्तव्य से च्युत क्यों हो रहा हूँ ?

सुशील ने अपने माता-पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने में किसी अनौचित्य का आभास न पाया। लीला के प्रथम दर्शन से लेकर आज तक का उसका व्यवहार और स्नेह, सुशील की आँखों के सामने साकार हो उठा। उसे लगा कि आज वही लीला विवश-विपन्न-सी तिमंजिले पर अकेली छोड़ दी गई है! उसने लीला की सेवा शुश्रूषा स्वयं करने का निश्चय किया और श्री नन्दा से कह दिया—'मैं अन्तिम प्रयत्न करने में कुछ उठा न रखूँगा!' और वह लपककर लीला के पास जा पहुँचा।

तिमंजिले पर जाकर सुशील ने ध्यानपूर्वक लीला को देखा। आँखें मूँदे वह अचेत-सी पड़ी हुई थी। वह तत्काल नीचे चला गया। अपने रोगियों की चिकित्सा का भार उसने अपने पिता पर सौंपा। अपनी सहायता के लिये उसने दो और कम्पाउण्डर नियुक्त किए और अपना टेलीफोन नीचे से उठाकर ऊपर तिमंजिले की बरसाती में जाकर लगा लिया।

गन्धक का धुआँ सारे मकान में देने की व्यवस्था कर और अन्य शोधक उपचारों का आश्रय लिया गया। बरसाती के द्वार

पर एक पर्दा लटका दिया गया और रोगी के वस्त्र तथा बिस्तर आदि तेजाब के बर्तन में साफ होने के लिए डाल दिए गए। सुशील ने स्वयं अपने हाथों केले के नवअंकुरित कोमल पत्ते बिछाकर उन पर लीला को लिटा दिया।

अब सुशील ने लीला का वास्तविक उपचार प्रारम्भ किया। बोरिक कॉटन (रुई) के फाहों से लीला के एक-एक छाले का मवाद पोंछ-पोंछकर वह उन फाहों को तेजाब में डालने लगा और छालों पर बोरिक पाऊडर छिड़कने लगा। प्रातः दोपहर और सायंकाल नियमित रूप से सुशील अपने हाथों यह उपचार करने लगा। उसे न दिन की चिन्ता थी, न रात की। केवल एक ही धुन उसे थी कि किसी प्रकार लीला के प्राण बच जायँ। अथक परिश्रम और गहरी चिन्ता के साथ वह लीला के उपचार में संलग्न था।

इधर श्री नन्दा ने आर्य समाज के पुरोहित को बुलाकर नित्य अपने घर में हवन कराने की व्यवस्था की। श्रीमती नन्दा अपने इष्टदेव के समक्ष रात-रात भर बैठकर प्रार्थना करने लगीं। अनेक देवी-देवताओं की मनौती उन्होंने की। डाक्टर मोहन और उनकी पत्नी भी ब्रह्मसमाज के विधान के अनुसार परमात्मा से लीला और सुशील दोनों के कल्याण के लिए प्रार्थना करने लगे। विधि की कैसी विडम्बना थी कि दोनों परिवार चिन्ता के अगम सागर की लहरों पर बहे जा रहे थे।

अड़तालीस घण्टे यों ही बीत गए, तब कहीं लीला ने अपनी आँखें खोलीं। उसने चारों ओर दृष्टि घुमाई और पुनः आँखें बन्द कर लीं।

सुशील जिन छालों का उपचार करता जाता, उनमें अब

लालिमा झलकने लगी थी और मवाद अपेक्षाकृत सूखने लगा था। यह देखकर सुशील को कुछ कुछ आशा होने लगी। फीडिंग बोतल द्वारा सुशील बीच-बीच में लीला को ग्लूकोस या दूध भी पिला दिया करता था, जिससे उसकी दुर्बलता न बढ़े।

लीला ने जब क्षण-भर के लिए आँखें खोलीं, तो सुशील ने उपचार करते-करते यह सहज ही देख लिया था और उसने भाँप लिया कि लीला की आँखें एकदम ठीक हैं। इससे सुशील का साहस बढ़ गया और उसे अपने अनुसन्धान-कार्य में एक नवीन सफलता की स्पष्ट झलक दिखलाई पड़ी।

घर के सभी लोग रोगी की दशा जानने के लिए अधीर हो रहे थे। बाहरी लोग भी पूछताछ के लिए बराबर आते रहते थे। परन्तु अब तक लीला के पास जाने की आज्ञा किसी को न दी गई थी। समाचार पूछने पर सुशील पर्दे के बाहर यही कह देता कि निश्चित रूप से अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

इसी तरह धीरे धीरे तीन-चार दिन और बीत गए। अब लीला को बड़ी बेचैनी का अनुभव होने लगा। उसके शरीर भर में जोरों की खुजलाहट होने लगी। वह सारा शरीर खुजा डालना चाहती थी; परन्तु सुशील ने इसकी व्यवस्था पहले से ही कर ली थी और खुजलाहट की रोकथाम करने के उद्देश्य से उसने लीला की अँगुलियों पर कपड़ा लपेट रक्खा था। सुशील स्वयं नीम की पत्तियों की एक छोटी-सी शाखा अपने हाथ में लेकर लीला के शरीर पर फेरता रहता, जिससे उसकी खुजलाहट बहुत न बढ़ने पाती और उसे कुछ शान्ति का अनुभव होता। नीम के शोधक गुण भी लीला के शरीर पर अपना प्रभाव डाल रहे थे।

दस दिन बीत जाने पर सुशील ने लीला के माता-पिता को ऊपर बुलवाया और उन्हें अपनी आँखों लीला को देख लेने की अनुमति दे दी। मृतप्राय बेटी को स्वस्थ होते देख माता-पिता की आँखों में प्रसन्नता और सुशील के प्रति कृतज्ञता के आँसू झलक उठे।

सुशील इस समय रोगी को क्षण भर के लिए भी अकेला छोड़ने के पक्ष में नहीं था। कारण, यही समय विशेष देख-भाल का रहता है। अब सुशील ने अपने कालेज के प्रिन्सिपल और विशेषज्ञ प्रोफेसर को टेलीफोन द्वारा आने का और रोगी को देख लेने का अनुरोध किया। ये दोनों ही आये और रोगी को ध्यानपूर्वक देखते रहे। सुशील ने अपने उपचारों का विस्तृत वृत्तान्त उन्हें सुनाया और कुछ विधि-निषेध भी उन्हें समझाए, जिससे भविष्य में मानव-समाज की इस रोग में कल्याणकारी सेवा की जा सके।

प्रिन्सिपल और विशेषज्ञ प्रोफेसर ने इस अनपेक्षित सफलता पर अपने शिष्य को अनेक बधाइयाँ दीं।

लीला जब स्वस्थ होने लगी और उसे अपनी बीमारी में सुशील की निरन्तर सेवा- शुश्रूषा का ज्ञान हुआ, तो वह मन-ही-मन एक अप्रकट लज्जा से भर उठी। उसने सुशील से कहा—'इस तुच्छ जीवन की रक्षा के लिए तुमने अपने अमूल्य जीवन की भी कोई चिन्ता नहीं की।

'क्यों भला ?' सुशील ने छोटा-सा प्रश्न किया।

'मृत्यु के भय से।' लीला ने भी छोटा-सा उत्तर दिया।

'इस अशान्ति से ओतप्रोत संसार से चले जाने के पश्चात् ही सच्ची शान्ति और यथार्थ सुख मिल सकता है, लीला ! वही

शान्ति अमर है। इस सृष्टि में मृत्यु ही सबसे बड़ा सत्य है। मरने के लिए ही तो मनुष्य का जन्म होता है, फिर मृत्यु से भय क्यों? डरकर मनुष्य जा कहाँ सकता है।' फिर एक क्षण रुककर सुशील ने कहा—'अच्छा, लो! थोड़ा-सा अंगूर का रस पी लो और सो जाओ। अभी तुम्हें अधिक बातचीत नहीं करनी चाहिए। हाँ, यह तो बतलाओ, अब तुम्हें करवट बदलने में तो कोई कष्ट नहीं होता?'

'नहीं!' लीला ने कह दिया।

'अच्छा, तो अब आराम करो! सो जाओ।'

२५

लगभग एक सप्ताह और बीत गया। अब लीला को बिस्तर से उठ कर बरसाती में ही टहलने की आज्ञा मिल गई थी। कभी-कभी इच्छा होने पर वह थोड़ा-सा टहल भी लेती थी।

बरसाती के एक कोने में लीला की शृंगार-मेज रक्खी हुई थी। एक दिन लीला की दृष्टि इस शृंगार मेज पर जा अटकी। वह धीरे-धीरे उस मेज के पास जा पहुँची और दर्पण में अपना मुख देखने की अपनी तीव्र इच्छा को वह दबा न सकी। परन्तु दर्पण में अपना प्रतिबिम्ब देखते ही एक गहरी उदासी से उसका मन भर गया। ऐसा लगा कि अपनी परिवर्तित-सी मुख-मुद्रा देखकर लीला के मन में घृणा के घने मेघ घिर आए हों। उसकी आँखें भर आईं और दो बड़े-बड़े आँसू उसके कपोलों पर ढुलकने ही वाले थे कि सहसा उसे किसी की पदचाप सुनाई पड़ी। घूमकर लीला ने देखा, तो सुशील को आया देख कर सहम सी गई।

सुशील को लीला की मनोदशा समझते देर नहीं लगी। उसने पूछ ही डाला - 'रोने का कारण क्या है, लीला ?'

'डाक्टर, तुमने मुझे मर क्यों न जाने दिया ?' लीला ने करुण स्वर से कहा—'अब यह विकृत-सा रूप-रङ्ग लेकर मैं संसार को अपना क्या मुख दिखलाऊँगी ?'

'व्यर्थ चिन्तित क्यों होती हो, लीला !' और उसका हाथ पकड़कर सुशील ने कहा—'इधर आओ।' और पलंग के पास

ले जाकर उसे बैठाते हुए कहा—'बैठ जाओ यहाँ।'

सुशील भी एक कुर्सी खींचकर पलंग के निकट ही बैठकर बोला—'सुनो, एक दिन की छोटी-सी कहानी तुम्हें सुनाता हूँ। एक दिन एक व्यक्ति बाजार में कड़ाके की धूप के बीच नंगे पाँव चला जा रहा था। तपती सड़क पर चलने के कारण उसे अपने पैरों का कष्ट अखर रहा था। पाँव में जूते न होने से पग-पग पर वह गहरे क्षोभ में डूबा जा रहा था। थोड़ी ही दूर वह गया होगा कि मार्ग में एक ओर ऐसा भिक्षुक उसे बैठा दिखलाई पड़ा, जिसकी दोनों टाँगें कट चुकी थीं। प्रतीत होता था कि किसी रेल-दुर्घटना में उसकी टाँगें कट गई थीं। इस भिक्षुक को देख वह अपने जूते न होने का क्षोभ एकदम भूल गया। उसे लगा कि उस लँगड़े से तो उसकी अपनी दशा कहीं बहुत अच्छी है।'

सुशील कहता जा रहा था—'लीला! प्रत्येक मनुष्य का दुःख अपने से हीन दशा वाले को देखकर सहसा दूर हो जाता है। फिर, तुम्हें इतनी चिन्ता करने की आवश्यकता ही क्या है? मैं जो तुम्हारे लिए चिन्ता कर रहा हूँ और रात-दिन अनुसन्धान में लगा हुआ हूँ। सर्वशक्तिमान् प्रभु की कृपा से जहाँ मुझे इतनी सफलता मिल गई है, वहाँ आगे भी सफलता मिलने का मुझे पूरा-पूरा विश्वास है। अच्छा, इन बातों को छोड़ो, लीला! अभी तुम मुझे यह बतलाओ कि किस विशेष वस्तु को खाने की तुम्हारी इच्छा होती है?'

'सच-सच कह दूँ?' लीला ने ध्यानपूर्वक सुशील की ओर देखते हुए पूछा।

'यदि तुम झूठ बोलना चाहती हो, तो तुम्हारी इच्छा!' सुशील ने कहा—'यद्यपि झूठ सुनना मुझे रुचिकर नहीं। आखिर सुनूँ तो सही, तुम क्या कहना चाहती हो?'

'खाने की वस्तुओं से अधिक तो मैं केवल यही चाहती हूँ कि क्या ही अच्छा हो, यदि आप अवकाश मिलने पर अपना अधिक-से-अधिक समय मेरे पास बैठकर बिताया करें और मैं जी भरकर आपकी मीठी-मीठी बातें सुना करूँ।'

'समझ गया!, सुशील ने कहा—'तो यह कहो कि खाने-पीने की वस्तुओं से अधिक तुम्हें मेरी बकबक अच्छी लगती है। अच्छा, यही किया जायगा।'

इसी बीच टेलीफोन की घण्टी बज उठी। सुशील ने कुर्सी से उठकर कहा—'अच्छा, मैं अभी आता हूँ, लीला!' और वह नीचे चला गया।

थोड़ी देर के पश्चात् फिर किसी के आने की पदचाप सुनाई पड़ी, तो लीला ने अपनी गीली आँखें तत्काल पोंछ डालीं और वह सँभलकर बैठ गई।

सुशील ने आते ही अपने हाथ की वस्तु दिखलाते हुए पूछा—'पहचानती हो लीला! यह क्या है?'

'हाँ-हाँ, बहुत अच्छी तरह! कच्चा नारियल है। इसमें पानी के अतिरिक्त और कुछ नहीं होगा। कहाँ मिला यह यहाँ?' लीला इतना ही कह सकी थी कि इनका गाड़ीवान एक बड़ी-सी बोरी कन्धे पर लादे अन्दर आकर पूछने लगा—'कहाँ रखूँ, बाबू जी?'

'उधर, साथ वाले कमरे में।' सुशील ने कह दिया।

'अन्य तीन बोरियाँ भी क्या ऊपर ही ले आऊँ?'

'उनमें से केवल दो यहाँ लाना, शेष तीसरी बोरी वहीं रहने दो।'

'यह सब कहाँ से आया?' लीला ने पूछा—'क्या होगा इतने ढेर से नारियलों का?'

'और भी कुछ पूछना है ?' सुशील ने कहा—'सभी बातें एक साथ पूछ डालो, तो उत्तर भी एक साथ ही दे दिया जाय ?'

'बस, और कुछ नहीं पूछना है।' लीला ने कहा।

'बर्दवान से ये नारियल तुम्हारे लिए ही मँगवाए गए हैं, लीला !' सुशील ने कहा—'इनका पानी तुम्हें प्रतिदिन पीना होगा और अपने हाथ-मुँह तथा शरीर को भी इसी पानी से धोना होगा। यह पानी तुम्हारे लिए औषधि का काम करेगा।' यह कहते-कहते हाथ वाले नारियल को काटकर उसका पानी एक गिलास में डाल उसे लीला की ओर बढ़ाते हुए कहा—'लो, इसे अभी पी जाओ।'

लीला ने कोई आपत्ति न करते हुए नारियल के पानी का वह गिलास पी डाला।

सुशील ने घड़ी की ओर देखते हुए कहा—'आठ बजे एक सज्जन से मुझे मिलना है। मैं अब जा रहा हूँ। तुम थोड़ा विश्राम कर लो।' और वह नीचे चला गया।

भोजन करते समय अपने पिता से सुशील ने कहा—'लीला अच्छी तो हो गई, पिता जी; लेकिन अपने हाथ-मुँह पर चेचक के धब्बे देखकर बड़ी दुःखी रहती है। मैंने नारियल के पानी का प्रयोग करना प्रारम्भ कर दिया है। आपका क्या विचार है ? यह प्रयोग लाभदायक सिद्ध होगा न ?'

'बेटा ! नारियल का पानी लाभप्रद तो सिद्ध हो चुका है।' डाक्टर मोहन ने कहा—'इसके प्रयोग से कुछ ही दिनों में रोगियों को अच्छा होते देखा गया है; परन्तु लीला का रोग बहुत ही भयंकर था, इसलिए यह प्रयोग सम्भव है कि बहुत दिनों तक करना पड़े। चिन्ता की बात ही क्या है ? नारियल तो अपने घर के ही हैं। बर्दवान से प्रति सप्ताह सौ नारियलों

का प्रबन्ध हो ही चुका है। हमें केवल रेल का किराया ही तो देना पड़ता है। तुम यह प्रयोग अवश्य कर देखो। इस मामले में अब तक की तुम्हारी सफलता अद्वितीय सिद्ध हो चुकी है। नगर के कोने-कोने में लोग तुम्हारी प्रशंसा के गीत गा रहे हैं।'

'लोगों की प्रशंसा से हमें क्या लाभ और उनके प्रशंसा न करने से हमारी क्या हानि? लोगों की बातें लोगों के लिए ही छोड़िए, पिता जी!' सुशील ने कहा—'मैंने अपने कर्त्तव्य का पालन किया है, जिसके साथ-साथ एक नवीन खोज भी हो गई है।'

दूसरे दिन प्रभात होते-होते सुशील ऊपर लीला के पास जा पहुँचा। वहाँ श्रीमती नन्दा को बैठे देख उसने पूछा—'क्या अब तक यह जागी नहीं?

'नहीं बेटा!' श्रीमती नन्दा ने उत्तर दिया।

'तो आप इसे जगा दीजिए। प्रभात कालीन हवा इसके लिए विशेष लाभप्रद होगी।'

लीला को उसकी माँ ने तत्काल जगा दिया। वह फौरन जाग उठी और बाहर जाकर छत पर टहलने लगी।

श्रीमती नन्दा और सुशील भी छत पर आकर खड़े हो गए। सहसा लीला ने सुशील की ओर देखते हुए कहा—'क्यों जी, तुमने उस दिन मुझे चिन्ताग्रस्त देखकर, यहाँ से शृँगार-मेज को ही हटवा दिया! अच्छा ही किया। दर्पण में न मैं अपना मुँह देखूँगी, न किसी चिन्ता से ग्रस्त हो सकूँगी।'

सुशील ने इस प्रसंग को चतुराई से टाल देनी की चेष्टा करते हुए पूछा—'कल शाम को मैंने तुम्हें नारियल का पानी पिलाया था, लीला! वह कैसा लगा तुम्हें?'

'बहुत अच्छा था।' लीला ने कह दिया।

यह सुनकर सुशील शीघ्रता पूर्वक साथ वाले कमरे में गया और एक गिलास नारियल का पानी पुनः उसके लिए ले आया और कहा—'लो; पी डालो इसे।' फिर चार-पाँच नारियलों का पानी एक बर्तन में भरकर एक छोटी-सी मेज़ पर लाकर रख दिया और बोला—'लो, पहले इससे अपना मुँह धो डालो। कोहनी तक दोनों हाथ और घुटनों तक टाँगें भी इसी पानी से धो लेना। दोपहर में नारियलों के पानी से ही सारा शरीर धो लेना होगा।'

यह कह कर सुशील नीचे अपने रोगियों को देखने चला गया। अब वह निश्चिन्त होकर अपने रोगियों की चिकित्सा में अपना पूरा ध्यान देने लगा।

२६

बर्दवान में श्री सुरेन्द्र मोहन अपने घर के एक कमरे में बहुत ही चिन्तित अवस्था में बैठे थे। अपने पुत्र और पुत्री को विधान के निर्मम पंजों में फँसा देने और द्वीपान्तरवास का दण्ड दिलवाने के पुरस्कारस्वरूप उन्हें सरकार की ओर से राय बहादुर की उपाधि से अलंकृत किया गया था। सरकार द्वारा और विदेशी उच्चाधिकारियों द्वारा उन्हें इस प्रकार अपने कर्त्तव्य पर दृढ़ रहने के लिये बधाइयाँ दी गई थी। उनके पद और वेतन में भी वृद्धि कर दी गई थी। परन्तु अपने ही हृदय के टुकड़ों को अपने ही हाथों की गई दुर्दशा का जब कभी सुरेन्द्र मोहन को ध्यान आ जाता, तब उनका हृदय भीतर-ही-भीतर उन्हें धिक्कार उठता था। ऐसे क्षणों में उनका मानसिक क्लेश इतना बढ़ जाता कि उनका हृदय फटने लगता।

सुरेन्द्र मोहन अपनी यह आन्तरिक व्यथा किसी पर प्रकट भी नहीं कर सकते थे। कदाचित इसी कारण यह व्यथा उन्हें भीतर-ही-भीतर ऐसा कचोट रही थी कि वह तिलमिला उठते।

विधि-विधान की कैसी विचित्र विडम्बना थी! मन-ही-मन घुलते रहो; किन्तु अपना दुःख और क्लेश किसी पर प्रकट भी न कर सको। उन्हें अपना जीवन अब अन्धकारपूर्ण और सर्वथा नीरस प्रतीत होने लगा। वह हतोत्साह और किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर एक हाथ से अपना माथा थाम कर बहुधा न जाने क्या-क्या सोचते रहते।

उनकी पत्नी तो उसी दिन से पागल-सी हो गई थीं, जिस दिन उसने अपने बेटे और बेटी को दी गई सजा का समाचार सुना था। दिन-दिन-भर विक्षिप्त-सी, घर में इधर-उधर घूमती रहती थीं। कभी कोई बक्स खोलती और कभी कोई ट्रंक तथा अपने बच्चों के रखे हुए कपड़ों को उलट-पुलटकर ध्यानपूर्वक देखती रहती। रात में सोते-सोते सहसा वह अपने बच्चे और बच्ची के नाम ऊँचे स्वर में पुकार उठती और बिस्तर से उठकर, द्वार खोल, बाहर निकल जाती। रायबहादुर सुरेन्द्र मोहन को यह देख अपनी पत्नी के पीछे-पीछे दौड़ जाना पड़ता और यत्नपूर्वक उसे लौटाकर ले आना पड़ता। उनकी बुद्धि चकराने लगी थी कि अब वह अपने दफ्तर में काम करने जायें अथवा इस अर्द्ध विक्षिप्त-सी पत्नी की देखभाल करें। एक अजीब-सी उलझन उनके सामने मुँह बनाए खड़ी रहती। भाँति-भाँति की चिकित्सा कराने पर भी पत्नी की दशा में कोई सन्तोषजनक सुधार नहीं हो रहा था।

इन चिन्ताओं के कारण सुरेन्द्र मोहन रात-दिन उद्विग्न रहने लगे थे। उधर समाज ने भी उनका बहिष्कार-सा कर रखा था। नाई क्षौर कर्म करने नहीं आते थे, धोबियों ने कपड़े धोने से हाथ खींच लिया था। खाद्य पदार्थों के खरीदने में भी बड़ी उलझनें होने लगी थीं। प्रायः सभी सम्बन्धी अब इनसे घृणा करने लगे थे।

कितने लाड-दुलार से रमेश और लज्जा का पालन-पोषण किया गया था। काले पानी का वातावरण इन बच्चों को कितना कष्टप्रद सिद्ध होगा, इसकी कल्पना करते ही सुरेन्द्रमोहन की धीरता अपना बाँध तोड़ बैठती। अपने यहाँ की पुलिस के हथकण्डे तो वह रात-दिन स्वयं देखते रहते थे, फिर अण्डेमान

के राजनैतिक बन्दियों के साथ किए जाने वाले निर्मम बर्त्ताव की तो कल्पना ही उनके रोंगटे खड़े कर देती थी। एक भीषण द्वन्द्व उनके मन में इन विचारों के कारण तूफान पैदा कर रहा था।

अपने मन के ऊहापोह के कारण सुरेन्द्र मोहन ने अपने कार्यकाल की अवधि पूर्ण होने के पहले ही अवकाश ग्रहण कर लेने के लिए सरकार के पास आवेदन-पत्र भेज दिया। सरकार ने उन्हें सहर्ष अनुमति दे दी। परन्तु मन की शान्ति उन्हें अब भी दुर्लभ रही। एक क्षण के लिए भी उन्हें शान्ति न थी। अशान्त होकर अन्त में उन्हें बर्दवान भी छोड़कर चले जाना पड़ा। अपने ही प्रान्त के एक छोटे से गाँव में जाकर अपना शेष जीवन बिताने लगे।

अब उनका सारा समय अपनी अर्द्ध विक्षिप्त पत्नी की सेवा-सुश्रूषा और देखभाल में ही व्यतीत होने लगा। उनका जीवन अब इसी सेवा-सुश्रूषा और मानसिक चिन्ताओं की अगम लहरों पर बहने लगा।

२७

आज वसन्त पंचमी का दिन है। वासन्ती उल्लास चारों ओर उमड़ रहा है। जिसे देखो; वही पीले रंग का कोई न कोई वस्त्र धारण किए अपूर्व मस्ती के साथ विचर रहा है। कहीं पीली चुन्नियाँ और साड़ियाँ रङ्ग बखेर रही हैं, तो कहीं पीली पगड़ियाँ, साफे अथवा टोपियाँ अपनी अपूर्व शोभा का प्रदर्शन कर रही हैं। किसी-किसी के हाथ में गेंदे का आकर्षक पीला फूल दीख रहा है; किसी के हाथ में पीले रङ्ग का रूमाल ही लहरा रहा है।

वह देखिए, सामने से एक ग्रामीण पीले रङ्ग की वास्कट पहने सड़क पर कैसी मस्ती के साथ चला आ रहा है। जहाँ दृष्टि फेंकिए, चारों ओर पीले रङ्ग का बहार छिटक रही है।

आकाश में भी आज रङ्ग की अपूर्व प्रति-स्पर्द्धा-सी दीख रही है। रङ्गबिरंगी हजारों गुड्डियाँ, कनकौवे और पतंगें उड़ रही हैं। किसी-किसी पतंग के साथ छोटे-छोटे रंगीन गुब्बारे भी लटक रहे हैं, जो एक सर्वथा नवीन झाँकी और अपूर्व छटा का सृजन कर दर्शकों का पूरा-पूरा मनोरञ्जन कर रहे हैं।

छतों और सड़कों पर लड़के-लड़कियों और नर-नारियों के झुण्ड-के-झुण्ड घूमते दिखाई पड़ रहे हैं। कुछ स्वयं पतंग उड़ा रहे हैं, तो कुछ पतंग उड़ाने वालों का साहस बढ़ाने के लिए भाँति-भाँति की आवाजें कस रहे हैं—'अरे ढील दे-ढील !··· उधर से कन्नी काट।···अरे, डोर खींच जल्दी।···वह आई

लालड़ी वाले की पतंग।'''नीले कनकौवे वाला बड़ी काइयाँ जान पड़ता है।'''कुछ अपने हाथों में माँझेदार डोर की रीलें लिए हुए इधर से उधर दौड़ रहे हैं।

लो वह सामने आकाश में दो पतंगें उलझ गईं। सब की दृष्टि उन्हीं पर केन्द्रित है। देखो, पतंग उड़ाने वाले ढील पर ढील देते चले जा रहे हैं। दोनों पतंगें इतनी ऊँचाई पर उड़ रही हैं कि ठीक तारों की भांति दीख रही हैं। और लो, वह कट गई एक पतंग! अनेक दर्शक अब डोर लूटने के लिए अधीर हो उठे। डोर हथियाने के लिए कुछ बालक अपूर्व साहस का परिचय दे रहे हैं। बन्दर की तरह एक मुँडेर से दूसरी पर कैसे उछल कर कूद रहे हैं ये बालक। यह विचार ही सम्भवत: इनके मस्तिक में नहीं आता कि डोर के लोभ में जो कहीं तनिक भी चूक जायँ, तो नीचे पत्थरों से परी गली में गिर पड़ेंगे और करारी चोट खा जायँगे। पर उनके सधे हुए पाँव शायद ही कभी चूकते हो। लो, उस कोठे से वाह-वाह का शोर मच उठा। सभी लोग तालियाँ बजाने लगे। अन्य छतों के सभी दर्शकों का ध्यान इस ओर आकृष्ट हो गया। सभी लोग उधर ही देखने लगे।

सुशील अपनी छत पर अकेला टहलता हुआ एक पुस्तक पढ़ रहा था। अकस्मात् यह शोर सुना, तो पुस्तक के पन्नों में अँगुली दे, वह भी उसी ओर देखने लगा वह एकटक देख रहा था उसी ओर। इसी समय नीचे से लीला ने भी यह शोर सुना, तो वह भी अपनी जिज्ञासा दबा न सकी और दौड़ती-हाँपती दो-दो सीढ़ियाँ लाँघती हुई ऊपर आ धमकी। वह पीले रङ्ग की रेशमी साड़ी, बलाऊज तथा पीले ऊन की कोटी पहने थी। उसके घने, काले और घुँघराले केशों को बिखरने से रोकने के लिए पीले रङ्ग का ही एक मनमोहक रिबन सुशोभित था। अचानक

ही वह आकर सुशील के निकट खड़ी हो कर पूछ बैठी 'कैसा शोर था यह ?'

'बड़े मजे की बात है, लीला !' सुशील कहने लगा—'मदन ने उस प्रोफेसर की गुड्डी काट दी। दो बार प्रोफेसर ने गुड्डी चढ़ाई, दोनों बार वह मदन की पतंग से उलझी और दोनों ही बार मदन ने काट दी। अब वह अन्य पतंग लेने बाज़ार गया है। मुहल्ला भर उसकी खिल्लियाँ उड़ा रहा है और डोर भी उसकी सबने बहुत लूट ली।'

ये बातें हो रही थीं कि सहसा पीछे से एक बहुत बड़ी पतंग कहीं से कटकर सुशील की पीठ से आ टकराई। सुशील चौंक उठा। घूमकर उसने देखा, तो उस पतंग को उसने अपने हाथ में ले लिया। उस पतंग के साथ जो भी डोर थी, उसी के सहारे सुशील ने भी उस पतंग को गगन में उड़ाना प्रारम्भ कर दिया।

थोड़े से ही प्रयत्न से सुशील की पतंग हवा से बातें करने लगी। उड़ती पतंग को सुशील के हाथ से लीला ने अपने हाथ में ले ली और स्वयं पतंग उड़ाने की व्यर्थ-सी चेष्टा करने लगी। ढील देते-देते डोर के कम होने का उसे ध्यान ही नहीं रहा और सहसा डोर का छोर उस के हाथ से सटक गया। डोर छूट गई और पतंग को स्वतंत्रता मिल गई। वह आकाश-मार्ग से स्वच्छन्द उड़ती हुई पता नहीं कहाँ-से-कहाँ उड़ती चली जा रही थी—आगे और आगे—ऊपर और बहुत ऊपर। कौन जाने कहाँ था उसका गन्तव्य स्थान। पता नहीं कहां पहुँचने की आकांक्षा थी उसमें ! लीला के हाथ का स्पर्श पाकर उस में पता नहीं कितनी गति भर चुकी थी।

लीला के हाथ से जब पतंग की डोर का छोर छूट गया, तब वह उसे पुनः अपने बन्धन में बाँध लेने की आकाँक्षा से उसके पीछे दौड़ पड़ी, किन्तु लीला का यह प्रासय असफल रहा। मुक्त-स्वछन्द पतंग की डोर का वह छोर लीला पुनः नहीं हथिया सकी।

सुशील एकटक यह सब देख रहा था। चुपचाप वह यह सब देखता रहा। उसका वश ही क्या था! वह कर ही क्या सकता था? हताश हो, दोनों छत पर पड़ी कुर्सियों पर जा बैठे।

'लीला!' सुशील ने धीमे स्वर में कहा।

'जी!' लीला ने भी दबी वाणी में कह दिया।

'आज तुम अनिन्द्य सुन्दरी दीख रही हो।' सुशील ने कहा—'इस पीले आवरण में तुम्हारा यह गुलाब सा मुखड़ा अनुपम प्रतीत हो रहा है। लगता है, तुम्हीं वसन्त की रानी हो और वसन्त लोक से इस पृथ्वी पर शासन करने के लिए उतर आई हो। तुम्हारे आवरण में वसन्त, तुम्हारे हृदय में वसन्त और तुम्हारी साँसों में भी वसन्त लहरा रहा है, लीला! आज तुम मुझे वसन्तमयी प्रतीत हो रही हो। क्या आज तुमने अपना रुप दर्पण में देखा है, लीला? क्या उस दिन के रङ्ग-रुप से तुमने आज के रङ्ग-रुप की तुलना की है लीला, जब कुछ ही दिन पूर्व तुम अपना मुख देखकर एक विकलता से भर उठी थीं और······।

'हाँ-हाँ, बहुत अच्छी तरह स्मरण है। वह बात भी भला, मैं कभी भूल सकती हूँ, जब आपने शृंगार-मेज ही मेरे पास से इसलिए हटवा दी थी कि मैं अपनी कुरुपता दर्पण में देखकर व्यर्थ ही किसी विकलता का अनुभव न करने पाऊँ। आपने मुझे सदा के लिए अपना ऋणी बना लिया है। यह तुच्छ जीवन

देकर भी तो मैं कभी आपसे उऋण नहीं हो सकती।'

'बस भी करो, लीला!' सुशील ने उसकी बात काटते हुए कहा—'मैं ये बड़ी-बड़ी बातें नहीं सुनना चाहता। मैं तो केवल तुलना करना चाहता था कि पीली और लाल रङ्ग की पुजारिन···? मेरा तात्पर्य तो आप समझ ही गई होंगी?'

'हाँ-हाँ मैं सब समझती हूँ।' लीला ने झट से कह दिया—'मुझे और स्पष्ट समझाने के लिए आपको अब अधिक कष्ट करने की आवश्यकता न पड़ेगी।'

'तो क्या मैं समझ लूँ कि अब भी हड़तालें चलती रहेंगी?'

बात पूरी भी नहीं हो पाई थी कि नीचे से किसी ने पुकार कर कहा—'डाक्टर साहब, एक लड़का साथ वाले घर से गिर कर मूर्च्छित हो गया है। जल्दी आने की कृपा कीजिए।'

सुशील तत्काल अपने औषधालय में चला गया। आहत लड़के को मेज़ पर लिटा कर बड़ी तत्परता से देखा-भाला और चोट खाए हुए अंगों पर मरहम-पट्टी कर दी। पीने की दवा भी दे दी और लड़के के माता-पिता से कहा—'चिन्ता की कोई बात नहीं है। आप लोग धीरज रखिए। यह शीघ्र ही भला-चंगा हो जायगा।'

अब तक श्री नन्दा और सारा परिवार इस आहत लड़के को देखने के लिए दवाखाने में आ पहुँचा था और उसके माँ-बाप को सन्त्वना देने में लोग भरसक चेष्टा कर रहे थे।

डॉक्टर सुशील की सहानुभूति पूर्ण वाणी सुनकर लड़के की माँ ने कहा—'जब आपने इसे हाथ लगा दिया है, तो यह अवश्य ही ठीक हो जायगा। आपके हाथों में तो जादू है डाक्टर साहब!'

एक अन्य स्त्री तभी बोल उठी—'क्या हम सबने देखा नहीं था कि लीला कितनी बीमार हो गई थी और बीमारी के बाद ही कैसा मुँह निकल आया था बेचारी का! पर डाक्टर साहब के उपचार का ही यह जादू है कि फिर उसका रूप-रङ्ग कैसा निखर आया है। कैसी नई-नवेली दीखने लगी है अब यह!'

उस आहत लड़के की माँ ने कहा—'भगवान् करें, डाक्टर साहब के हाथों में और भी अधिक यश हो। हम सारे मुहल्ले वाले डाक्टर साहब के चिरजीवी होने की कामना करते हैं और भगवान से प्रार्थना करते हैं कि हमारे डाक्टर साहब को निरन्तर फूलता-फलता बनाए!'

लड़के के पिता ने लड़के को गोद में उठाया और जाने के पहले दस रुपये का एक नोट डाक्टर सुशील की मेज़ पर रख दिया। लेकिन लीला ने वह नोट उठा कर उसी आहत लड़के के हाथ में देते हुए कहा—'लो, जब अच्छे हो जाओ, तब इन रुपयों से पतंग और डोर मोल लेकर फिर उसे उड़ाना और मिठाई भी खा लेना।'

लड़के के पिता ने कहा—'नहीं-नहीं; यह तो डाक्टर साहब की फ़ीस और दवा के रुपये हैं।'

लीला ने अपने शब्दों पर ज़ोर देते हुए कहा—'आप शायद नहीं जानते कि यह अपने पड़ोसियों और मुहल्ले वालों से कभी कुछ नहीं लेते—न फ़ीस, न दवा का दाम।'

इतने पर भी जब लड़के के पिता ने रुपया स्वीकार कर लेने का आग्रह किया, तो लीला ने कहा—'यदि आपको रुपए ही देने हों, तो नगर में डाक्टरों की कमी नहीं है। आप किसी और को बुला लिया करें।'

लीला की यह स्नेह भरी फटकार सुनकर लड़के के पिता ने वह नोट अपनी जेब में रखते हुए कहा—'नहीं लीला! यह कोई बात नहीं है! दवा के दाम देना हम लोगों का कर्त्तव्य है।' और वह चला गया।

श्रीमती नन्दा वहीं खड़ी यह सब देख रही थीं। जब वे लोग चले गए, तब उन्होंने लीला से कहा—'बेटी! घर आई लक्ष्मी को इस प्रकार नहीं लौटाया जाता।'

सुशील की माँ ने कहा—'बच्चे जो ठहरे! ये लोग धन का मूल्य क्या जानें, बहिन!'

लीला ने इन दोनों की बातें सुनी, तो उससे न रहा गया। हँसकर उसने कहा—'हाँ, माता जी; आप ठीक कह रही हैं। हम अभी बच्चे ही ठहरे न!

यह सुनते ही सब लोग हँस पड़े। एक स्निग्ध वातावरण वहाँ छा गया। सभी लोग अपने-अपने कमरे में चले गए।

२८

दिन बीतते गए। सुशील ने डाक्टरी द्वारा जनता की सेवा करना ही अपना ध्येय बना लिया था। सेवा-भाव से प्रेरित होकर ही वह सबकी चिकित्सा किया करता था। आवश्यकता देखकर वह निर्धन रोगियों की शुश्रूषा और दवा-दारू की व्यवस्था भी स्वयं कर दिया करता था।

थोड़े ही समय में धन-दौलत और यश-मान डाक्टर सुशील के चरण चूमने लगे। उसकी प्रसिद्धि में चार चाँद लग गए। नगर भर से, आस-पास के ग्रामों से और दूरस्थ्य प्रदेशों से भी पुराने और निराश तथा मृतप्राय रोगी डाक्टर सुशील के पास दौड़े आते और वह उन्हें स्वस्थ कर देने में अपनी सारी शक्तियाँ लगा देता।

इन्हीं दिनों की बात है। प्रान्त के एक बहुत बड़े अँगरेज़ पदाधिकारी की पत्नी के बच्चा होने वाला था। उसकी पत्नी का यह हठ था कि वह विदेशी डाक्टरों को छोड़, किसी भारतीय डाक्टर से अपनी चिकित्सा भूल कर भी न करायगी। सारे अँगरेज़ डाक्टरों और विशेषज्ञों ने उसे देख-भालकर उसकी दशा असाध्य घोषित कर घुटने टेक दिए।

अँगरेज़ पदाधिकारी ने परिस्थिति की विषमता से बाध्य होकर किसी प्रकार अपनी पत्नी को समझा-बुझाकर इस बात पर सहमत कर लिया कि अब यह मामला किसी भारतीय विशेषज्ञ को ही सौंप देना ठीक होगा। इसी प्रसँग में डाक्टर सुशील के

गहन अनुभव, उसके यश और हस्तलाघव की बात इस अँगरेज़ दम्पति के कानों में कई बार पहुँच चुकी थी, अतः स्वभावतः इसके लिए उस अँगरेज़ महिला ने अपनी अनुमति दे दी।

अँगरेज़ अफ़सर ने डाक्टर सुशील को अपने बँगले पर बुलवाया और परामर्श लिया। बँगले पर ही आपरेशन करने का निश्चय किया गया। बँगले का एक कमरा इस कार्य के लिए ठीक कर दिया गया। आवश्यक औषधियाँ और यन्त्रादि जब जुटाए जा चुके, तब दो नर्सों और दो सहायक डाक्टरों का भी प्रबन्ध कर दिया गया।

यथासमय अँगरेज़ महिला को उस कमरे में लाया गया। सारा आवश्यक प्रबन्ध पहले ही कर लिया गया था, अतः 'क्लोरोफार्म' का प्रयोग करके सुशील ने आपरेशन करना प्रारम्भ कर दिया। नर्सें और सहायक डाक्टर सुशील के निर्देशानुसार सावधानी के साथ अपना काम करते रहे। कुछ ही समय के पश्चात् सुशील ने आपरेशन का काम समाप्त कर डाला और उसे शत-प्रतिशत सफलता हाथ लगी। अँगरेज़ अफसर को उसने कमरे के भीतर आ जाने की अनुमति दे दी। अपनी प्रिय पत्नी को खतरे से बाहर देखकर और नवजात शिशु के दर्शन कर उसके आनन्द की सीमा न रही।

मनुष्य जब चारों ओर से निराश हो जाता है और उसे अन्धकार ही चारों ओर से सिमटता प्रतीत होने लगता है, तब उसी सघन अन्धकार के बीच प्रकाश की जो अप्रत्याशित सूक्ष्म किरणें उसे सहसा दीख पड़ती हैं, वे उसके टूटते मानस में एक अपूर्व उल्लास और आनन्द का संचार कर देती हैं। इस अंगरेज अफसर का भी ठीक यही हाल था। बड़े-बड़े डाक्टरों द्वारा जब उसे इस मामले में टका-सा जवाब मिल चुका था, तब डाक्टर

सुशील की इस सफलता पर उसके मन-मयूर का नाच उठना सर्वथा स्वाभाविक ही था। अगणित धन्यवादों की उसने झड़ी लगा दी। सुशील ने देखा कि उस अँगरेज अफसर की आँखें प्रसन्नता और कृतज्ञता के मिश्रित आँसुओं से भीग चुकी थीं।

कमरे के बाहर आकर उस अँगरेज अफसर ने डाक्टर सुशील को फीस के रूप में दो हजार रुपए भेंट किए और उसे विदा करने बँगले के फाटक तक आया। अन्य डाक्टरों और नर्सों को भी उसने यथोचित फीस देकर प्रसन्न कर दिया।

दूसरे दिन प्रातः नगर के सभी लोगों ने समाचार-पत्रों में इस आपरेशन के संबंध में डाक्टर सुशील की अपूर्व सफलता का संवाद पढ़ा। लीला ने भी जब यह संवाद पढ़ा, तो समाचार पत्र हाथ में लिये हुए वह दौड़ी-दौड़ी सुशील के पास आई और चुपचाप प्रसन्न मुद्रा में उसके निकट खड़ी हो गई। लीला की प्रसन्न मुद्रा देखते ही सुशील उसके अन्तर के भावों को बखूबी समझ गया; किन्तु वह जान-बूझकर चुप रहा—कुछ नहीं बोला।

काफी देर तक दोनों चुप रहे। फिर सुशील ने ही इस मौन वातावरण को भंग करते हुए कहा—'आओ लीला! बैठ जाओ खड़ी क्यों हो।'

लीला ने एक कुर्सी खींच ली और सुशील के पास ही वह बैठ गई। उसकी इस सफलता पर लीला ने अपनी हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की।

इसी प्रकार दिन पर दिन और मास पर मास बीतते चले गए। एक दिन निकट के ही एक ग्राम में प्लेग के भीषण प्रकोप की सूचना मिली। सरकार की ओर से नगर के सभी डाक्टरों को चिकित्सा के लिए भेजा गया। सुशील ऐसे अवसर पर कब

पीछे रह सकता था ? वह भी अपने यंत्रादि लेकर जनता की सेवा में जा पहुँचा।

सुशील प्रतिदिन उस प्लेग-प्रकंपित गाँव में जाता और रोगियों के उपचार में लगा रहता। उसकी सेवाओं के फलस्वरूप अनेक रोगी मौत के मुँह से साफ बच गए। किन्तु विधि-विधान की विचित्रताएँ मानव समझ नहीं पाता। डाक्टर होते हुए और सारी सावधानी का ध्यान रखते हुए भी उस भयंकर बीमारी के आक्रमण से सुशील स्वयं अपनी रक्षा न कर सका। एक दिन सन्ध्या समय जब वह अपने दवाखाने में लौटकर आया, तो उसे काफी तेज़ बुखार था। तत्काल उसने अपने लिए दवा तैयार की और कण्ठ के नीचे उतार ली।

थोड़ी ही देर में घर के सभी लोगों को यह दुःसंवाद मिल गया। सुशील को ऊपर के शयन-कक्ष में ले जाकर लिटा दिया गया। नगर के प्रख्यात डाक्टरों को बुलाया गया; परन्तु प्लेग की गिल्टियाँ और ताप सुशील के शरीर पर जोरों का आक्रमण कर चुके थे। सभी डाक्टरों ने आकर सुशील को बारीकी से देखा-भाला, तो उनके मुख पर गंभीर आशंका और चिन्ता की रेखाएँ उभर आईं।

लीला भी उसी कमरे में बैठी थी। डाक्टरों की बातें सुनकर स्थिति की गम्भीरता समझ लेने में उसे देर नहीं लगी। सारा साहस बटोर कर उसने डाक्टरों की ओर देखते हुए कहा—'प्रतीत होता है, आप लोग घबरा गए हैं। मेरा आप से अनुरोध है कि इनकी उचित चिकित्सा के लिए आप लोग कोई उपाय उठा न रक्खें। व्यय की आप चिन्ता न कीजिए। आप लोग जिसे चाहें, बुला लें और जो चिकित्सा करना चाहें, वही करें। इनके जीवन की रक्षा आप लोगों को करनी ही होगी।'

डाक्टर मोहन भी वहीं बैठे थे। लीला की अधीरता को देखकर सुशील के प्रति उनका पितृ हृदय भी उमड़ आया और कहने—'बेटी! धन से भी कहीं किसी को जीवन-दान मिला है!' उनकी आँखों से टपाटप आँसू बरसने लगे—'अब तो यह चन्द घण्टों का मेहमान है तुम्हारे घर में।' और जेब से रूमाल निकाल कर वह अपने आँसू पोंछने लगे।

लीला ने साहस पूर्वक कहा—'आप अपने मुँह से ऐसी बातें न निकालिए, पिता जी!'

बाहर बरामदे में श्री नन्दा भी विक्षिप्त की भाँति बड़-बड़ाते हुए टहल रहे थे। 'मैं अब क्या करूँ?' बस, यही चार शब्द वह बराबर दुहरा रहे थे।

थोड़ी देर में सुशील कुछ सचेत हुआ। उसने अपनी आँखें खोलीं, तो सामने लीला को देखते ही कहा—'यह रोग बड़ा ही संक्रामक है, लीला! यहाँ तुम्हें तो क्या, किसी को नहीं आना चाहिये।'

डाक्टर मोहन को अपने पास बुलवाकर सुशील ने कहा—'घर के सब लोगों को प्लेग का टीका लगवा दीजिए, पिता जी! और, इस लीला को अच्छी तरह सँभालिए। यह अपने ऊपर अत्याचार करने पर तुली प्रतीत होती है। सम्भव है, यह टीका लगवाने के लिए भी तैयार न होगी।'

लीला बीच में ही बोल उठी—'जब आप अच्छे हो जायेंगे, तब मैं आप से ही टीका लगवा लूँगी। अन्य किसी के हाथों में टीका न लगवाऊँगी!'

सुशील ने मन्द स्वर में धीरे धीरे कहा—'देखो लीला! जीवन और मृत्यु से ठठोली करना ठीक नहीं होता—'कभी करना भी नहीं चाहिए। मैं जानता हूँ, मुझे रोगाक्रान्त देखकर

तुम्हें आन्तरिक कष्ट हो रहा है, ; क्योंकि मैं स्वयं यह अनुभव कर चुका हूँ। जब डाक्टरों ने तुम्हें उस ऊपर वाली बरसाती में सर्वथा अकेला छोड़ दिया था, तब······ ! मैं ठीक कह रहा हूँ न ? आओ, इधर आओ लीला ! और पास आ जाओ, लीला ! मुझे तुमसे बहुत बातें करनी हैं ; परन्तु लगता है कि शायद ही मैं सारी बातें कह सकूँ। यह मेरा तुमसे दिन रात का कलरव अब शायद समाप्त होने जा रहा है। अधिक समय मेरे पास नहीं है। कठिनाई से चार-पाँच घण्टे ही शायद मिलें।'

'आप मुझ से ऐसी बातें न कीजिए।' लीला ने भरे गले से कहा—'मैं यह सब सहन न कर सकूँगी।'

'अच्छा, नहीं करूँगा ऐसी बातें।' सुशील ने टकटकी लगाए लीला की ओर देखते हुए कहा -'देखो लीला ! तुम लोगों से तो मेरी भेंट हो ही गई ; लेकिन रमा से अब इस जन्म में मिल सकने की आशा नहीं। यदि वह कभी लौटे और तुम से मिले, तो तुम उनसे मेरे ये दो-चार शब्द अवश्य कह देना कि यह सब राजनैतिक झमेले छोड़कर वह संसार की सच्ची राजनीति को अपनाने की चेष्टा करे। यह भी कह देना कि यदि मैंने उसे कभी कोई कष्ट पहुँचाया हो, तो वह उसे भूल जाये और मुझे उसके लिए हृदय से क्षमा कर दे, जिससे मेरी आत्मा को सच्ची शान्ति प्राप्त हो सके।' इतना कहकर सुशील ने अनुभव किया कि वह काफी थक गया है। कुछ देर रुककर उसने अपनी शक्ति बटोरने की चेष्टा की और कहा—'लो, जाते समय एक हल्की-सी चाय की प्याली और पिला दो, लीला !

लीला ने तत्काल चाय का एक प्याला तैयार कर दिया। सुशील को छोड़कर वह कहीं एक मिनट के लिए भी नहीं जाना

चाहती थी। कप में चाय उँडेलकर वह धीरे धीरे सुशील को पिलाने लगी। बहुत चेष्टा करने पर भी लीला अपने हृदय के टूटते बाँध को रोक नहीं सकी और उसकी आँखों से टपाटप आँसू बरसने लगे। कुछ आँसू सुशील की कनपटी पर जाकर गिरे, तो उसे लीला के टूटते हृदय का ध्यान आ गया।

लीला ! तुम रो रही हो !' सुशील ने अपने ही रूमाल से उसकी गीली आँखें पोंछ दीं और उसे समझाते हुए कहा—'रोओ मत, लीला ! अच्छा, एक बात तुमसे पूछता हूँ । एक रोगी है, जो यह जानता है कि उसके प्राण-पखेरू शीघ्र ही उड़ने की तैयारी कर रहे हैं और दूसरा है उसका स्वस्थ साथी, जो यह जानता है कि उसका रोगी साथी शीघ्र ही उसे छोड़ कर प्रयाण करने वाला है। अब तुम यह बतलाओ कि इन दोनों में से किसे अधिक कष्ट होता है ?'

'जो जीवित रह जाता है, उसे ही अधिक दुःख होता है। विछोह सदा दुःखद होता है न ! यह दुःख उस समय सीमा से पार कर जाता है, जब उसे यह भी पता चल जाता है कि बिछुड़ने वाला साथी अब उस लोक में जा रहा है, जहाँ से लौटकर वह फिर कभी उसके पास न आ सकेगा।'

'पगली कहीं की !' सुशील ने कहा—'अरी, जो सदा के लिए इस लोक से प्रस्थान करने की तैयारी में रहता है, वह इस बात को चेष्टा करने पर भी भुला नहीं पाता कि उसके द्वारा संचित अथवा निर्मित अनेक वस्तुएँ, उसका परिवार, यह संसार—सभी कुछ छोड़कर वह महाप्रस्थान कर रहा है। उसी दुःख के कारण उसके प्राण ऐसे छटपटाते हैं कि बहुत ही कष्ट

से इस काया के पिंजड़े को छोड़ पाते हैं। यह कष्ट मृत्यु से भी कहीं अधिक है।

लीला इस प्रसंग को बदल देना चाहती थी। ऐसी बातें सुनकर उसके धैर्य का बाँध टूटा जा रहा था। इसी लिए उसने कहा—'देखिए, अब तनिक आराम कर लें। इतनी बातें करके आप थक गए होंगे।'

'अब तो आराम ही करना है लीला! चिर विश्राम करना है।' सुशील कहने लगा—'लम्बी और जटिल यात्रा सामने है। मार्ग अनदेखा और अनजान है। सुनो लीला, मैंने समय-समय पर ऐसी अनेक बातें तुमसे की होंगी, जो अप्रिय और तीखी रही होंगी लेकिन तुमने कभी उनका बुरा नहीं माना। आज अन्तिम समय में भी मेरी किसी बात पर तुम बुरा न मान बैठना, लीला! सदा की तरह आज भी, यदि मेरी कोई बात तुम्हें कड़वी लग रही हो, तो मुझे क्षमा कर देना।'

लीला बीच में ही बोल उठी—'बड़े होकर छोटों से क्षमा माँगना शोभा नहीं देता। होना तो यह चाहिये कि मुझ पर कभी किसी कारण आपको क्रोध भी आया हो, तो उसे भूलकर मुझे क्षमा करें और आशीर्वाद दें कि मैं आपके आदेशों पर चलने में समर्थ हो सकूँ। यह कहते-कहते लीला फफक-फफक कर रो उठी और सुशील के पैरों पर अपना सिर रखकर आँसूओं से उसके पग पखारने लगी।

लीला के मस्तक पर अपना एक हाथ फेरते हुए सुशील ने धीमे स्वर में कहा—मेरा अन्तिम अनुरोध यही है लीला, कि मेरी मृत्यु पर तुम आँसू मत बहाना। यदि तुम यह कर सकीं, तो इससे मुझे मेरी आत्मा को शान्ति मिल सकेगी। सुनो ली···ला·····ली······।'

कहते-कहते सुशील की आवाज़ बिल्कुल मद्धम पड़ गई। और सहसा एक झटके के साथ उस का मुख जो अभी तक लीला की ओर था दूसरी ओर लटक गया। सुशील की साँस टूटते ही लीला की सहन-शक्ति भी अपना बाँध तोड़ बैठी। कटे वृक्ष की भाँति वह पछाड़ खाकर सुशील के वक्ष पर जा गिरी और ज़ोरों से चीख उठी।

लीली की चीख सुनकर सारा परिवार वहाँ दौड़कर जा पहुँचा। और एक हृदय द्रावक चीत्कार से उस घर का कोना कोना गूंज उठा।

प्रात: साढ़े चार बजे का समय था कि यह अप्रिय और हृदय-विदारक संवाद मुहल्ले भर में बिजली की तरह फैल गया थोड़ी ही देर में मुहल्ले-भर के लोग आकर घर के सामने एकत्रित हो गए।

लीला को मूर्छित अवस्था में सुशील के शव पर से उठाया गया। लीला का सर्वस्व लुट चुका था। आँखें नीरस, मुख मन्द, हृदय कठोर, शरीर जड़वत और वाक्शक्ति पता नहीं कहाँ खो गई थी। परन्तु चेतना आते ही वह सचेत होने की चेष्टा करने लगी। उसे सुशील के अन्तिम शब्दों का स्मरण आ गया। वह उठ बैठी और सुशील की अन्त्येष्टि क्रिया में जाने के लिए प्रस्तुत हो गई।

नगर के अगणित छोटे-बड़े नागरिकों और प्रतिष्ठित पदाधिकारियों के साथ सुशील की अर्थी श्मशान की ओर जा रही थी। अर्थी के पीछे-पीछे सर्वथा शान्त किन्तु म्लान मुद्रा में लीला भी चली जा रही थी। सभी की आँखें गीली थीं, सभी के मन भारी थे।

श्मशान में पहुँचकर लीला ने स्वयं अपने हाथों सुशील के शव का दाह-संस्कार किया। अपने जीवन के सर्वस्व को अपने ही हाथों उसे भस्म कर देना पड़ा।

धू-धू कर सुशील की चिता जल रही थी। उसका शव संसार की आँखों के सामने भस्म हो रहा था; किन्तु लीला के मानस-पट पर उसका सर्वस्व अब भी अंकित था—अमिट था।